श्रीरामः

अन्तिम-आकांक्षा

श्रीसियारामशरण गुप्त

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

द्वितीय बार

१९९५

मूल्य

१॥)

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित।

चिरञ्जीवी सुमित्रानन्दन

और

चिरञ्जीवी अशोक

को

प्यार के साथ

श्रीरामः

अन्तिम-आकांक्षा

१

उस दिन दस-बारह बरस के एक हृष्ट-पुष्ट लड़के को अपने यहाँ मजूरी के काम पर देखकर सहसा मेरे मुहँ से एक लम्बी साँस निकल पड़ी। इस साँस का कारण बताने के लिए मुझे बहुत पीछे लौटना पड़ेगा।

बरसों की बात है, एक दिन रामलाल भी पहले-पहल इसी अवस्था में मेरे यहाँ काम पर आया था। आज इस लड़के को देख कर मुझे उसीका स्मरण हो आया। देखता हूँ, बचने का प्रयत्न करने पर भी किसी तरह मैं उसकी स्मृति से बच नहीं सकता। मेरी मानसिक दशा सचमुच

उस बच्चे जैसी हो रही है, जो अपने साथियों के दुर्व्यवहार की शिकायत अपने बड़ों के पास ले दौड़ता है और इसके दूसरे ही क्षण उन्हीं साथियों में मिलकर लड़ता-झगड़ता हुआ फिर खेलने लगता है।

रामलाल के आने के दिन की बात मुझे अच्छी तरह याद है। उस दिन किसी मुसलमानी त्यौहार के कारण मेरे मदरसे की छुट्टी थी। मेरी वह छुट्टी, कारागार के सींकचों से कार्यवशात् ही उस बन्दी के बाहर निकलने के समान थी,—जिसके हाथ-पैर हथकड़ी-बेड़ी से जकड़े ही रहते हैं। क्योंकि मेरे अध्यापक को अच्छी तरह मालूम था कि मैं मुसलमान किसी तरह नहीं हूँ। और, उनका विचार था कि व्यवस्थापिका सभाओं के स्थानों की तरह सार्वजनिक छुट्टियाँ भी अलग अलग होनी चाहिए। इसलिए घर पर अध्ययन करने का कठोर निर्देश उन्होंने मुझे पहले ही कर रक्खा था। सहसा उस अध्ययन से ऊबकर मैंने अपने कमरे के भीतर से पुकारा—परसादी!

एक बालक मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। अवस्था में वह मुझसे बड़ा न था, परन्तु अपनी स्वस्थ देह के कारण वह पहली ही बार मुझे अपने से बड़ा मालूम हुआ। मुझे अपनी ओर देखते देख कर अपरिचय के किसी

संकोच के बिना तुरन्त ही उसने कहा—परसादी भैया सौदा-पता लेने बाजार गये हैं। क्या काम है,—मैं कर दूँगा।

मैंने विरक्ति प्रकट करते हुए कहा—तुम क्या कर सकोगे—जाओ, देखो अपना काम। जब वह आ जाय, तब उसीको भेज देना। बड़ा कामचोर है; कई दिन से कमरे में झाड़ू तक नहीं दी। पाँच मिनट के किसी काम से गया होगा और लगा देगा पूरा एक घन्टा। मुझसे तो इस गन्दगी में बैठ कर लिखा-पढ़ा नहीं जाता।

"मैं अभी सब ठीक किये देता हूँ, उस कमरे में झाड़ू पड़ी है"—कह कर वह वहाँ से तेजी से चला गया। उसकी इस तत्परता ने परसादी के प्रति मेरा क्रोध और बढ़ा दिया। मुझे छोटा समझ कर ही वह मेरी परवा नहीं करता; उसे काम करना चाहिए इस नये नौकर की तरह दौड़ दड़ौ कर। झाड़ू उठा कर वह तुरन्त ही लौट आया और मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा में चुपचाप एक जगह खड़ा हो गया। मैंने कहा—देख, इस तरह झाड़ू फेर कि कोई चीज इधर की उधर न हो जाय।

"यह मैं जानता हूँ; परन्तु भैया, तनिक उठकर तुम बाहर चले जाओ। धूल उड़ेगी।"

नई बात सुनी। परसादी इस तरह का वाक्य-व्यय आवश्यक नहीं समझता। आया और झट-से उसने अपना काम शुरू कर दिया। धूल उड़ेगी तो मैं अपने आप उसके साथ उड़ कर बाहर चला जाऊँगा, यह एक मानी हुई बात है। मैं प्रसन्नता-पूर्वक उठकर बाहर चला गया।

घन्टे डेढ़ घन्टे बाद लौट कर देखा कि खड़ा खड़ा वह अपने हाथ-पैर धो रहा है। पूछने पर मालूम हुआ, कमरे की सफाई करके अभी अभी बाहर आया है। सुनकर जी खट्टा हो गया। जैसा परसादी, वैसा ही यह;—नौकर नौकर सब एक हैं! इतनी देर तक यह क्या करता रहा? झाड़ू उठाने तो इस तेजी से गया था मानों सब काम अभी एक क्षण में किये डालता है और काम करने बैठा तो दो घन्टे लगा दिये। परन्तु जहाँ एक ओर मुझे असन्तोष हुआ, वहीं दूसरी ओर सन्तोष का कारण भी कम न था। बाहर जाकर अनावश्यक देर मैंने स्वयं कर दी थी। अब मैं कह सकता था कि इतनी देर न पढ़ सकने में मेरा कुछ दोष नहीं।

भीतर जाकर देखा तो वैसा ही रह गया। मेरे कमरे का यह सम्मार्जन पूर्ण स्वस्थ पुरुष के गंगा-स्नान जैसा था,

किसी रुग्ण के दो चार छींटों से शुद्ध हो जाने जैसा नहीं। ऊपर के जिन आलों में दीवाली के दूसरे दिन की धूल साल भर तक के लिए सुख से जम कर बैठ गई थी, वहाँ से उसे भी मानों बल-पूर्वक हटा दिया गया था। मकड़जालों ने छत में मसहरी तान रक्खी थी। एक लकड़ी में लत्ता बाँध कर उसकी सफाई भी कर दी गई थी। अलमारी में कुछ पुस्तकों के नीचे धूल चिपक गई थी, उसे पोंछना भी वह न भूला था। पुस्तकें और कागज-पत्र इधर-उधर बिखरे पड़े थे, उठाकर वे सब एक स्थान पर रख दिये गये थे। यद्यपि बड़े के ऊपर छोटे के सिलसिले से वे न थे, परन्तु यह सब करना तो मेरा काम था। स्नान के अनन्तर अस्तव्यस्त बालों के लिए कन्घी को ही कष्ट देना पड़ता है।

मेरे मुहँ से अपने आप निकल पड़ा—वाह तूने तो बड़ा काम किया!

उसने प्रसन्नता पूर्वक चुपचाप सिर झुका लिया। मैंने पूछा—तेरा नाम क्या है?

"रमला।"

मैंने माँ से सीखा था कि नौकर-चाकरों का नाम भी बिगाड़ कर न कहना चाहिए। पूछा—रमला क्या,—रामलाल?

उसने हँस कर कहा—हाँ, सब लोग मुझे रमला ही कहते हैं।

मैंने सिर हिला कर कहा—नहीं, दादा का नौकर परसादी, मेरा नौकर रामलाल। अच्छा बोल, करेगा मेरा सब काम ?

उसे जोर की हँसी आई। बोला—काम न करूँगा तो आया किस लिए हूँ ?

"ठीक ! दादा का नौकर परसादी, मेरा रामलाल।"

उसे 'रामलाल' कह कर मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई मानों काम के पुरस्कार में मैंने उसे एक अक्षर और एक मात्रा की कोई दुर्लभ उपाधि ही दे डाली हो।

इसी समय बाहर खेलती हुई मुन्नी जोर से चिल्ला उठी—अरे भैया, रस्सी तोड़ कर श्यामा छूट गई।

छूटी क्या, बँधी गाय को भी मुन्नी डरती थी और मैं था उसका बड़ा भाई। फलतः उसके लिए मेरे मुह से सान्त्वना की कोई बात न निकल सकी। तब तक रामलाल बोल उठा—बिन्नी, डर मत, श्यामा को मैं अभी बाँधे देता हूँ।

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—बिना पहचान की है, तुझे मारेगी तो नहीं ?

"मारेगी कैसे"—कह कर उसने पास रक्खी हुई एक लकड़ी उठा ली। परन्तु उसे लकड़ी के अच्छे या बुरे किसी उपयोग की आवश्यकता नहीं पड़ी। झट-से जाकर उसने गाय की टूटी डोर पकड़ ली और उसे थपथपाने लगा। मुझे अपने स्थान से पीछे हटते देख उसने हँसते हुए कहा—भैया, घबराने की क्या बात है? आओ, तुम भी इसके ऊपर हाथ फेर जाओ।

इस डर से कि रामलाल कहीं इसे मेरे पास न हाँक लाये, मैंने पीछे हटते हुए कहा—नहीं रे, तू इसे पीछे के घर में जल्दी बाँध आ। कहीं बिचक न उठे। ढोरों से मुझे बहुत डर लगता है। अभी परसों ही मुहल्ले में किसी गाय ने एक लड़के के पैर में वह ठोकर मारी कि उसकी हड्डी टूटते टूटते बची।

रामलाल ने कहा—उसने कोई पाप किया होगा, नहीं तो गाय किसीको मारती है? श्यामा है। भगवान तक ने इसका दूध पिया है।

श्यामा गाय की यह महिमा मैंने भी सुनी थी। परन्तु इस बात पर विश्वास करने के ही लिए मैंने अपने को संकट में डालना उचित नहीं समझा।

वह उसे ले जाकर यथास्थान बाँध आया। मैंने कहा—चल रामलाल, माँ के पास। देर हो गई, कुछ खा ले।

वह बोला—माँ ने तो पहले ही खिला दिया था। कहने लगीं, घर जाने में देर हो गई, इसलिए यहीं खा ले। मैंने कहा, नहीं माँ, देर कुछ नहीं हुई; घर पर अभी रोटी ही तैयार न हुई होगी। काम लग जाता है तो मैं तीसरे पहर तक बिना खाये रह सकता हूँ। सबेरे डट कर जो खा लेता हूँ। सुनकर वे 'राम-राम' करके कहने लगीं, इतने छोटे बच्चे भी कहीं इतनी देर तक भूखे रह सकते हैं! आ, कुछ खा ले। फिर मैं नाहीं न कर सका।

सुनकर मुझे कुछ बहुत अच्छा न लगा। माँ में यही तो ऐब है, जिसे देखा उसीको प्यार करने लगती हैं। उचित तो यही है कि सब माताएँ अपने अपने बच्चों को प्यार करें! मुझे मुनीम कक्का की बात याद आई कि इस घर में कोई नौकर अच्छी तरह काम नहीं कर सकता। माँ ही उन्हें बिगाड़ देती हैं। नौकरी तो उन्हें मिलती ही है, खाना-पीना उनका मुफ्त हो जाता है। कोई भी हो, घर में किसी का पेट खाली नहीं रहने पाता, और पेट भरा है तो किसीको काम की क्या चिन्ता?

किसी काम से माँ को वहाँ आया देखकर मैंने कहा—माँ, तुमने मेरे नौकर को क्यों खिला दिया?

माँ ने हँस कर कहा—खिला दिया तो क्या हुआ ? तू भी तो उससे खा लेने की ही कह रहा था।

रामलाल कुछ संकुचित हो पड़ा। कदाचित् इस विचार से कि माँ के सम्बन्ध में वह जो कुछ कह रहा था, उसे उन्होंने सुन लिया। मैंने कहा—खिलाना होता तो अपने नौकर को मैं खिलाता, तुम बीच में क्यों पड़ गईं ? तुम उसे फुसलाना चाहती हो ! देख रामलाल, तू मेरा नौकर है, अब माँ का कोई काम किया तो ठीक न होगा।

२

इधर-उधर घूम फिर कर, सन्ध्या के उपरान्त नित्य की भाँति जब मैं घर लौटा तब मुन्नी रामलाल के सामने बैठी बड़े ध्यान से कुछ सुन रही थी। मुझे देखते ही उल्लास के साथ बोल उठी—भैया, बड़ी अच्छी कहानी है; तुम भी सुन लो।

मैंने रामलाल से पूछा—तुझे कहानी कह आती है?

उसने विनय का आडम्बर किये बिना, निस्संकोच कहा—हाँ हाँ भैया, मैं ऐसी कहानियाँ कह सकता हूँ, जो रात रात भर पूरी न हों।

मुन्नी कहने लगी—बैठ जाओ भैया, सुन लो। राजा ने अपने दो राजकुमारों को देशनिकाला दे दिया था। रात में पहरे पर जागते हुए भूखे छोटे कुँवर से पेड़ के पंछी ने आदमी की बोली में—हाँ, क्या कहा रामलाल?

रामलाल कहने लगा—सुनसान अँधेरी रात; चारों ओर बियाबान जंगल। ऐसे में पेड़ के पंछी ने आदमी की बोली में साफ साफ कहा—सुन, ऐ राजकुमार !

"सब झूठ" कह कर मैं आगे बढ़ने लगा, परन्तु रामलाल के अभिनयोचित कथन ने मेरे हृदय और कान अपनी ओर आकृष्ट कर लिये। मुन्नी कहने लगी—वाह झूठ कैसे ! रामलाल ने साधू-महात्मा के मुहँ से सुनी है,—उनकी ? नो दिन रात कभी ठंडी नहीं होती; पूरा माथा भर कर तिलक लगाते हैं। क्यों रामलाल ?

उसने संक्षेप में कहा—हाँ।

मुझे जान पड़ा कि वक्ता और श्रोता के इस आमन्त्रण को ठुकरा कर मैंने ठीक नहीं किया। नहीं तो, उस कहानी का कहने वाला क्या अकेला रामलाल ही था ? नहीं, उसके भीतर से अनन्त काल की गाथा अपने आप बोल रही थी; न जानें कितने युगों से उसका वह अविरुद्ध स्रोत निरन्तर बहता चला आ रहा था; न जानें कितने शिशुओं के हर्षोच्छ्वास से फिर फिर ओतप्रोत होकर, उस दिन रामलाल की वाणी का रस भी अपने में भरता हुआ, न जानें वह कितना आगे बढ़ जाना चाहता था ! असत्य और अनैसर्गिक कहकर उसकी गति वहीं रोक दी जाती, क्या

यह सम्भव था ?—नहीं, मैं आगे न बढ़ सका। लौट कर मुन्नी के पास बैठ गया और उसकी पीठ थपथपा कर उसे दोनों हाथों से हिलाने लगा। उसके हृदय के श्रोता का आनन्द मानों इतनी ही बात से दुगुना हो गया। बोली—झूठ नहीं भैया, रामलाल ने बहुत बड़े साधू-महात्मा के मुह से सुनी है। उनकी धूनी रात-दिन—

मैंने कहा—दुत्! साधू-महात्मा कह बैठे कि मेरी पूजा में किसी मुन्नी की बलि चाहिए तो क्या तू इसे भी मान लेगी ?

उसने अपना सिर दूसरी ओर फेर कर कहा—जाओ, मैं तुम्हारी बात नहीं सुनती।

रामलाल को कहानी कहने के लिए प्रस्तुत देख कर मैंने कहा—तुम्हारी यह कहानी रात भर वाली तो नहीं है ?

वह बोला—नहीं भैया, बहुत छोटी है। परन्तु तुम कहो तो दूसरी सुनाऊँ। दानव और उसकी कन्या की। दानव ने नगर का नगर उजाड़ कर दिया था। बहुत अच्छी। जो एक बार सुन लेते हैं, बार बार सुनना चाहते हैं।

विज्ञ श्रोता को सामने पाकर रामलाल एक अख्यात साहित्यिक की तरह अपनी सर्वोत्तम वस्तु सुनाने के लिए बुरी तरह व्याकुल हो उठा। परन्तु बीच में ही टोक कर

मुन्नी ने कहा—नहीं भैया, यही होने दो । हाँ, रामलाल, सुनसान अँधेरी रात में पेड़ के पंछी ने आदमी की बोली में कहा;—हाँ, क्या कहा ?

उत्सुकता मेरी भी जाग गई थी, फिर भी मुझे अपने बड़प्पन का ध्यान रखना आवश्यक था । मैंने मुन्नी से कहा—देख, कहानी के बीच में 'हूँ' तुझे ही करनी पड़ेगी ।

रामलाल की वाग्धारा इन साधारण बातों से रुकने की न थी । अपने पूर्व वेग से वह फिर प्रवाहित होने लगी । बाल-साहित्य की अनेक कहानियाँ मैं पहले पढ़ चुका था; इधर-उधर सुनी भी बहुत-सी थीं । परन्तु इसके कथन में तो कुछ दूसरी ही बात है । मेरे लिए इस तरह की जो कहानी अपनी षोड़शावस्था पार करके कभी की जरा-जर्जर हो चुकी थी, रत्नाभूषण पहना कर इसने मानों फिर से उसे पूर्वावस्था में लाकर मेरे सामने खड़ा कर दिया । माँ के पद-शब्द से सहसा मेरा ध्यान टूटा । झट-से कुछ आगे झुकते हुए, रामलाल के मुँह पर अपना एक हाथ रख कर मैंने कहा—चुप !

मुन्नी एक दम चौंक पड़ी । मैंने कहा—देख रामलाल, माँ सुन रही हैं । तू मेरा नौकर है; खबरदार जो इन्हें कुछ

सुनने दिया। क्यों मुन्नी, कैसी अच्छी कहनी है ? आज तक ऐसी कभी किसीने न सुनी होगी। है न ठीक ?

प्रशंसा बहुत कुछ खाई जाने वाली तमाखू के समान है, जो अपना नशा पेट के भीतर पहुँचे बिना ही देने लगती है। कहानी के सम्बन्ध में मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसका उद्देश्य शुद्ध प्रशंसा न होकर कुछ और है, यह बात रामलाल निश्चय ही जानता था। फिर भी मैंने देखा, एकाएक वह पुलकित हो उठा है। बोला—हाँ माँ, बड़ी अच्छी कहानी है। परन्तु दूसरी इससे भी अच्छी है। तुम सुनो तो वैसी ही रह जाओ।

मैंने रोष दिखा कर कहा—देख फिर वही बात। मैं कह चुका हूँ,—खबरदार जो माँ को कुछ सुनने दिया।

माँ ने भीतर की ओर लौटते हुए कहा—चल चल, रहने दे अपनी कहानी; मैंने भी बहुत सुनी हैं।

रामलाल ने मुन्नी को हाथ से ठेलते हुए दबे स्वर में कहा—जा बिन्नी जा, माँ को लौटा तो ला।

मुन्नी दौड़ कर माँ से लिपट गई। उन्हें अपनी ओर खींचती हुई अनुनय के स्वर में बोली—आओ माँ, तनिक तुम भी सुन लो। पेड़ के पंछी ने आदमी की बोली में बात की थी। रामलाल ने बहुत बड़े साधू-महात्मा के मुहँ से सुनी है।

साधू-महात्मा की धूनी और उनके तिलक छापों की बात सुने बिना ही माँ को अविश्वास का कोई कारण न दीखा। लौट कर हँसती हुई बोलीं—तेरे भैया तो सुनने ही नहीं देते। सबेरे उन्होंने रामलाल को खिला-पिला नहीं पाया तभी से नाराज हैं।

मुन्नी बोली—हाँ माँ, रामलाल को यहीं ब्यालू करा दो। घर जा रहे थे, तब तक मैंने कहानी कहने के लिए रोक दिया।—सुनती हो माँ?

माँ ने उत्तर दिया—परन्तु तेरी कहानी पूरी हो तब तो।

रामलाल को ब्यालू का यह प्रसंग अच्छा न लगा। उसको कहानी का पुरस्कार इससे बढ़ कर और क्या हो सकता था कि ऐसे ऐसे श्रोता उसके सामने थे। उसने संकोच के भाव से कहा—नहीं, मुझे कुछ देर नहीं हुई। मैं घर जाकर ही—

बीच में ही आज्ञा-सूचक कठोर स्वर से मैंने कहा—नहीं, ब्यालू तुझे यहीं करनी पड़ेगी।

रामलाल हलकी हँसी हँसकर फिर कहानी कहने लगा।

३

दो चार ही दिन में रामलाल मुझसे हिल मिल गया। उसका व्यवहार उन दूसरे नौकरों जैसा न था, जिन्हें मेरे काम के लिए अवकाश के समय में भी कभी अवकाश न मिलता था। अपने आप आ आकर वह मेरी आवश्यकताएँ जानने का प्रयत्न करता था। पतंग की डोर पर माँजा चढ़ाने के लिए मुझे काँच के महीन चूरे की आवश्यकता पड़ती। दूसरे नौकरों की आनाकानी के कारण एक दिन मैं स्वयं काँच पीसने बैठ गया। इसके लिए मेरे ऊपर डाँट पड़ी। वास्तव में यह डाँट पड़नी चाहिए थी नौकरों पर, जो उस समय तमाखू जैसा बहुमूल्य पदार्थ जला जला कर राख कर रहे थे। रामलाल के कारण मेरी यह कठिनाई सहज ही दूर हो गई। वह मेरा समवयस्क ही था, परन्तु काँच पीसते हुए उसके कोई नुकोला कण चुभ जाने का डर किसीको न था।—इसलिए अब जब मैं चाहता तभी मेरी डोर पर माँजे का

कवच चढ़ जाता। दूसरे की कटी हुई पतंग लूटना भी मेरे लिए निषिद्ध था। मेरे सामने से ही किसीकी कटी हुई पतंग निकल जाय और दो ही पग दौड़कर मैं उसके ऊपर अपना आधिपत्य न जमा सकूँ, इस बात से मेरे किशोर मन को कितनी पीड़ा होती, इसे दूसरा कोई अकालवृद्ध क्या जानें। लूटी हुई इस पतंग में मेरे लिए विजय-गर्व का जो आकर्षण था, बाजार से खरीद कर लाई गई सौ पतंगों में भी वह कहाँ। लूट-पाट के इस काम में रामलाल जैसा उत्साह दिखाया करता, उससे मेरे खेल का आनन्द सौगुना बढ़ जाता। एक दिन रंग-बिरंगी पतंग लूटने के लिए ऊपर के एक छज्जे पर वह बिल्ली की तरह चढ़ गया। वहाँ से जरा भी चूकता तो नीचे गिरकर उसकी हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाती। परन्तु जब सकुशल नीचे उतर कर उसने वह पतंग मेरे हाथ में दी, तब नौकर और स्वामी का भाव भूल कर अपने उस विजयी सेनापति से मैं एकदम लिपट गया।

परन्तु रामलाल था 'नीच जाति'। अर्थात, वह हमारे यहाँ रोटी खा सकता था; हमारे जूठे बर्त्तन उठाकर माँज सकता था। और भी इसी तरह के अनेक काम थे, जिनसे अपने किसी पूर्वज का सिर नीचा होने का डर उसे न था।

अतएव उसके साथ मेरी यह घनिष्ठता मुनीम कक्का को बहुत खटकती। वे मेरे पिता के निजी आदमियों में से थे और दीर्घ काल तक सुख-दुख के अभिन्न साथी रह कर हमारे परिवार के एक अंग ही बन गये थे। छुटपन में बहुत समय तक मैं यह अनुभव भी न कर सका था कि वे हमारे वेतन-भोगी हैं। घर में मुझे किसी का डर था तो उन्हींका। याद नहीं आता कि उन्होंने कभी मुझे मारा-पीटा हो, परन्तु मेरा विश्वास है कि यदि किसी नये यन्त्र की सहायता से उन दिनों मेरे मन का निरीक्षण किया जाता तो उस पर उनकी झिड़कियों की चोट के कई नीले चिन्ह उभरे दिखाई देते।

कक्का रामलाल से सन्तुष्ट न थे, यह मुझसे छिपा न था। कोई नौकर अपना निर्दिष्ट काम पूरा करके भी खेल-कूद का समय निकाल ले, यह जैसे उन्हें सह्य न था। वह पूरा काम नहीं करता, इस बात का प्रमाण क्या यह कुछ कम था कि वह मेरे साथ खेल-कूद भी लेता है। सम्भव है, उनके इस असन्तोष ने रामलाल को और भी मेरे निकट ला दिया हो। इसलिए उस दिन मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जब एक दिन दस रुपये का एक नोट लाकर मुझे बताते हुए उसने कहा—कक्का की गद्दी पर पड़ा मिला।

कक्का की गद्दी पर !—एक दम आनन्द से उछल कर मैंने नोट उसके हाथ से छीन लिया। अब कहें, दूसरों पर तो तनिक तनिक-सी बात पर बिगड़ते हैं और स्वयं दस दस रुपये के नोट इस तरह गिरा देते हैं। परन्तु हाय ! मुझमें ऐसी शक्ति न थी कि ऐसी भूल के लिए भी उनसे कुछ कह-सुन सकूँ।

उनके सामने मैं अपनी उपस्थिति सदैव अपराधी के रूप में ही पाता था। इसलिए उनके नोट गिरा देने की यह घटना मुझे बहुत महत्वपूर्ण जान पड़ी। मेरे लिए यह एक ऐसी विजय थी, जिसका आनन्द दुहरा था। विजयी रामलाल के ऊपर छापा मार कर अपने बल से मैंने इसे हस्तगत किया था।

परन्तु मेरा यह आनन्द तभी तक था, जब तक मैं कक्का के सामने न था। मेरे हाथ में नोट देख कर मेरे कुछ कहने के पहले ही वे बोल उठे—गद्दी पर से यह नोट क्यों उठाया ?

उस कठोर स्वर से मैं एक दम गड़बड़ा गया। तुरन्त उत्तर न देने से सम्भव था, मेरे अज्ञात अपराध में और भी वृद्धि हो जाती, इसलिए अचानक शीघ्रता में कह बैठा—रामलाल लिये जा रहा था—

हाय, मेरे मुँह से यह क्या निकल गया ! कक्का अब उस बेचारे को चोर समझ बैठें तो वह इस कलंक को धोयगा किस तरह ? दस रुपये की निधि उसके लिए साधारण न थी। पाँच महीने के अविश्रान्त परिश्रम के रूप में ही वह इसे पा सकता था। सो भी ऋण के ब्याज की कमी के रूप में, प्रत्यक्ष इसी तरह नहीं।

कक्का ने अपने सहज-कर्कश स्वर में मुझसे पूछा—उसने इसे गद्दी पर से उठाया क्यों ?—मानों रामलाल मैं ही होऊँ। अब इस बात का मैं क्या उत्तर देता ? देख कर भी यदि वहाँ से वह उसे न उठाता तो कौन कह सकता है, यह भी उसका एक अपराध न होता। उसकी स्थिति मानों कैंची के संयुक्त दो भागों के बीच में थी। ऊपर की धार से अपने को बचाता है तो नीचे की धार से नहीं बचता और नीचे की धार से अपने को बचाता है तो ऊपर की धार से नहीं बचता। फिर भी कक्का ने रामलाल की नियत के ऊपर कोई आक्रमण नहीं किया, यही मुझे बहुत जान पड़ा।

गिरे हुए नोट के मिल जाने पर भी उनकी चेष्टा में प्रसन्नता की कोई छाप न देख कर मुझे उस समय बहुत दिनों तक बड़ा विस्मय रहा था। इसके कई बरस बाद

यह समझने की योग्यता मुझमें आ सकी कि वास्तव में उस नोट के पड़े रहने में उनकी कोई भूल न थी। जाना-समझा ही वह वहाँ पड़ा रहा था। जान पड़ता है, इस घटना के बाद कक्का के व्यवहार में उसके प्रति निश्चय ही कुछ कोमलता आगई थी;—छेनी चलाने वाला पत्थर पर पानी डालकर उसमें जिस प्रकार की अलक्ष्य कोमलता उत्पन्न कर देता है, कुछ कुछ उसी प्रकार की। इसीसे उस समय उसे मैं समझ न सका था।

कक्का ने मुझे लौट जाते देखकर एकाएक कहा—आज कल तुम कुछ लिखते-पढ़ते भी हो या दिन भर खेलकूद और ऊधम-उपद्रव ही किया करते हो?

मैंने ठिठक कर कहा—पढ़ता तो हूँ।

"क्या पढ़ते हो,—अँगरेजी?"

"हाँ।"

"अच्छा देखें, क्या पढ़ते हो। बोलो अँगरेजी!"

मैं चक्कर में पड़ गया कि क्या अँगरेजी बोलूँ और कुछ बोलूँ भी तो कक्का उसे समझेंगे क्या। हतबुद्धि-सा जहाँ का तहाँ देखकर मुझे डाँटते हुए उन्होंने कहा—तुम समझते हो, यह बूढ़ा बेवकूफ अँगरेजी क्या समझेगा?—परन्तु मैं इतने में ही समझ गया, तुम्हारी लियाकत क्या है।

नीच जाति के लड़कों के साथ खेलने से इस तरह का बोदापन न आयगा तो क्या ? इतने बड़े हो गये, परन्तु बात करने का शऊर भी न आया। उस दिन सक्सेना वकील के यहाँ एक अँगरेज आया, उसके साथ में उसका छः सात बरस का एक लड़का था। उसकी फर्राटे की अँगरेजी सुनकर वकील साहब भी चकरा गये और तुम अभी तक अँगरेजी में एक बात भी नहीं कर सकते। जाओ, कमरे में बैठकर अच्छी तरह पढ़ो।

इच्छा हुई, जान लेकर एकदम यहाँ से भाग जाऊँ। परन्तु भागा हुआ समझ कर कहीं फिर से न पकड़ लिया जाऊँ, इसलिए धीरे धीरे खिसक कर चुपचाप अपने कमरे में जा बैठा।

प्रति दिन की तरह उस दिन भी जब घूम-घाम कर सन्ध्या के बाद घर लौटा तो मुन्नी ने झट-से मेरे पास आकर कहा—भैया, तुम कहाँ गये थे ?—कका तुम्हें खोजते थे।

मैं शंकित हो उठा। पूछा—क्यों, क्या बात थी ?

उसने कहा—उनके साथ कोई बाबू था। कहने लगे, बुलाओ हरी को; बाबू साहब के साथ अँगरेजी में बातचीत करेगा। बाबू से कहते थे, हरी पढ़ने में बहुत तेज है। खूब पढ़ा कर उसे डिपटी कलट्टर बनायँगे।

मेरी अनुपस्थिति में कक्का मेरे विषय में ऐसी बात कहते थे! मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं तैयार था जेल की आज्ञा सुनने के लिए और न्यायालय ने दे दिया नगद पुरस्कार। मैंने हँस कर कहा—हूँ, जाने दे बाबू को!—तनिक रामलाल को तो बुला बिन्नी। उसकी कहानी सुनूँगा।

मुन्नी ने म्लान-मन से कहा—कक्का ने रामलाल को खलिहान पर भेज दिया है। वहाँ वह नाज की चौकसी करेगा। किसान बड़े चोर हैं न। आँख बचाकर तुरन्त बोरे के बोरे उड़ा देते हैं—इसी से।

मेरे घर में रामलाल की विश्वस्तता का यह पहला पुरस्कार था।

४

खलिहान गाँव से कुछ दूर था। रविवार के दिन वहाँ जाने के लिए मैं अकेला निकल पड़ा। समझता था, मार्ग मेरा जाना हुआ है। पहले दो एक बार मैं वहाँ हो आया था। परन्तु गाँव के बाहर कुछ दूर जाकर मैं एक विचित्र गोरखधन्धे में पड़ गया। दो पगडंडियाँ बाईं तरफ गई थीं तो चार दाईं तरफ। कटे हुए खेतों के बीच में भी आने जाने वालों ने बहुत-से नये मार्ग बना लिये थे। गाँव के लोग इन सबमें से किसी एक को किस तरह पहचान लेते हैं, मेरे लिए यह एक समस्या थी। रंग-रूप, आकार-प्रकार इन सबका एक; न कोई छोटा और न कोई बड़ा। अपने परिचय के विषय में सब समान रूप से चुप। किसी पुस्तक के बीच किसी अज्ञात भाषा के उद्धरण को छोड़ते हुए आगे का अंश पढ़ कर हम अपने

आप ठीक ठिकाने पर आ जाते हैं; यहाँ यह भी सम्भव न था। इसलिए उन पगडंडियों के अनुग्रह पर ही अपने को छोड़कर मुझे आगे बढ़ना पड़ा।

बहुत दूर निकल जाने पर, उस ओर से आते हुए एक किसान ने 'राम राम !' करके मुझसे कहा—इधर कहाँ जा रहे हो भैया ?

रुक कर मैंने कहा—अपने बड़े खेत के खलिहान तक घूमने के लिए जा रहा था।

"तुम्हारा रास्ता तो पीछे छूट गया। भैया, तुम जैसे बड़े आदमियों का काम इधर अकेले आने का थोड़े है। बड़े मालिक (मेरे पिता) की भी जब कभी खेत-खलिहान देखने की मौज होती थी तब हमेशा चार छः नौकर साथ रहते थे। तुम्हें भी किसीको साथ लेकर आना चाहिए था। मैं काम से जा रहा हूँ, नहीं तो तुम्हें मैं ही वहाँ तक पहुँचा आता। देखो, इस पगडंडी से जाकर सामने वह जो इमली का पेड़ दीख रहा है—"

मैंने सामने की ओर देखा, वहाँ बहुत-से पेड़ दिखाई दिये। अब इनमें से कौन पेड़ इमली है और कौन आम, मेरे लिए यह जानना कठिन था। फिर भी मैंने कहा—अच्छा।

"तो बस उस खेत की मेंड़ को बाईं ओर छोड़कर सीधे चले जाना।"

इस तरह बार बार अपनी भूल का संशोधन-परिशोधन करता हुआ बड़ी कठिनता से मैं अपने खलिहान पर पहुँचा।

वहाँ काम करने वालों को बड़ा विस्मय हुआ। मानों पैदल ही सारी पृथ्वी की परिक्रमा करके मैं वहाँ पहुँचा होऊँ। रतना ने कहा—भैया, अकेले इतनी दूर कैसे चले आये; कहीं रास्ता तो नहीं भूले?

किसना ने उसे फटकारते हुए कहा—बेशऊर कहीं का! यहाँ तक भी न आ सकते? उनको अँगरेजी की पोथी में दुनिया भर की बातें लिखी हैं। बम्बई, कलकत्ता और न जानें कहाँ कहाँ की।

इसके बाद उसने गिटपिट गिटपिट करके अँगरेजी पढ़ने की नकल की।

मैंने पूछा—रामलाल कहाँ है?

वह बोला—कौन रामलाल?

एक दूसरे आदमी ने कहा—अरे रमला की बात कह रहे हैं, रमला की! भैया, ऐसा बज्रो लड़का तो दूसरा नहीं देखा। इसे वहीं बुलालो तो चैन पड़े। दिन भर

ऊधम करता रहता है। किसी काम के लिए कहो तो सौ बहाने। अभी अभी रोटी खाकर नहर के बम्बे पर पानी पीने गया है। नवाब का बेटा है न, इस कुएँ का पानी खारी लगता है!

मैंने बिस्मय से पूछा—रोटी खाने का यह कौन समय है?

"भैया, यह खेत है, घर नहीं कि जब जो चाहा भीतर जाकर मालकिन के हाथ-पैर जोड़े और दो चार फुलके झट-से पेट में डालकर हाथ-मुहँ पोछते हुए बाहर निकल आये। यहाँ तो फुरसत पाकर जब कोई घर से रोटी दे जाय तभी समय है। हाँ, आज कुछ देर हो गई।"

"तो क्या वह इतनी देर तक भूखा ही बना रहा?"

"वह भूखा रहेगा तो हो चुका। रतन की एक रोटी जबर्दस्ती छीन कर खा गया। और फिर यहाँ तो ढेर के ढेर गेहूँ-चने हैं। दिन भर खाता रहता है।"

"कच्चे ही?

छने चनों के ढेर के पास खड़े हुए एक आदमी ने कुछ चने उठा कर अपने मुहँ में डालते हुए कहा—भैया, यह अन्न-देवता है; कच्चा भी किस किसको मिलता है?

सुन कर दूसरे लोग हँसने लगे। अँगरेजी की पोथी में दुनिया भर की बातें पढ़ा हुआ मैं, मानों इतनी साधारण बात भी नहीं जानता।

थोड़ी देर में ही रामलाल दिखाई दिया—एक भैंस की पीठ पर चढ़ा हुआ। एक हाथ में मोटी छड़ी जैसी कोई लकड़ी थी और दूसरे में हाल की तोड़ी हुई एक अमिया। उसे ऊपर उछाल कर उसी हाथ में बार बार गुपक रहा था। दूर से देखते ही रतन ने कहा—देखी भैया, रमला की शैतानी? यह ऐसे ही काम करता रहता है। भैंस बेंतर हो तो नीचे गिराकर सीधा जमराज के यहाँ भेज दे।

मुझे हँसी आगई। इसी बीच में रामलाल ने मुझे देख लिया। देखते ही झट-से भैंस की पीठ पर से नीचे कूद पड़ा और लकड़ी मार मार कर उसे इस प्रकार भगाने लगा, मानों नाज खाने के लिए अनधिकार प्रवेश करके वह उसकी सीमा के भीतर आगई हो।

मेरे पास आकर बोला—भैया, बहुत दिनों में यहाँ आये? आज मैं अपने आप वहाँ आने की सोच रहा था। साथ में डोर पतंग नहीं लाये? लाते तो बड़ा मजा रहता।

मैंने कहा—लड़ाने के लिए यहाँ दूसरा तो कोई है ही नहीं।

"अरे दूसरा कोई नहीं है तो क्या हुआ, हम अपने आप ही तानते। सचमुच बड़ा अच्छा रहता।"

बड़बड़ाते हुए एक किसान ने आकर कपड़े की बँधी हुई झोली में से एक ढेर कच्ची अमियाँ नीचे गिराते हुए कहा—देखो भैया, इस रमला की शैतानी! मेरे आम पर चढ़ कर ये अमियाँ झड़ा आया है। कच्ची हैं, अब यह नुकसान हुआ या नहीं? रखवाली पर बूढ़ी डोकरी थी, उसके रोकने पर उसे मुहँ से चिढ़ा कर भाग आया। बड़े आदमी का नौकर समझ कर कोई कुछ नहीं कहता। नहीं तो गुस्सा ऐसा आता है कि अच्छी तरह धुनक दू, जिसमें फिर हमेशा को याद रहे।

रामलाल ने टेढ़ी नजर से उसे देखते हुए कहा—अमियाँ क्या मैंने गिराई हैं? अपने आप हवा से झड़कर गिर गईं और झूठ मूठ मेरा नाम लेते हैं। डोकरी बिना कारण मुझसे चिढ़ती है। कहती है, इस पेड़ के नीचे से रास्ता नहीं है; उधर से जाओ। मैंने तो कुछ कहा नहीं, नहीं तो झोंटा पकड़ कर—

किसान ने भड़क कर कहा—सुन लो भैया रतन, सुन लो इस लड़के की बात! मेरा नुकसान करके उलटा मुझीको डाँट रहा है। ये अमियाँ हवा की गिरी हैं? देखो, देखो—

आदमियों ने बड़ी कठिनता से समझा बुझाकर उसे वहाँ से रवाना कर पाया। उसके चले जाने पर रतन ने कहा—देख लिया भैया, तुमने इसका हाल? यह हम सबकी बदनामी करायगा। मुनीम कक्का से कह कर इसे यहाँ से बुला लो। उनके हंटर पड़ेंगे तभी यह मानेगा।

रामलाल के मुँह पर निश्चिन्तता का ऐसा भाव था, मानों उसकी शिकायत की चिट्ठी ऐसे लेटर बक्स में डाली गई है, जिसमें की चिट्ठियाँ कभी निकाली ही नहीं जातीं। उसने कहा—दादा, नाखुश क्यों होते हो, मैं अभी चिलम भर कर लाता हूँ।

रतन को छोड़कर और सब लोग हँस पड़े। एक ने कहा—भैया, समझे इसकी बात? अभी अभी इतनी फटकार पड़ चुकी है, फिर भी शरारत करने के लिए तैयार है। चिलम में तमाखू की जगह न जानें कौन कौन-सी सूखी पत्तियाँ धर लायगा और कहेगा—लो दादा, पियो तमाखू!

रतन उसके ऊपर एक तिरछी नजर डाल कर चुप रह गया। अपनी हँसी रोकते हुए रामलाल ने मुझसे कहा—चलो भैया, तुम्हें यहाँ घुमा-फिरा दूँ।

चलते चलते मैंने कहा—रामलाल, घर पर तो तू ऐसा नटखट न था।

"घर पर तो माँ हैं, तुम हो, दादा हैं।"

"और कक्का नहीं ?"

रामलाल ने मुँह बिचका कर उपेक्षा के भाव से कहा—हूँ,—क्या मैं उन्हें डरता हूँ ! माँ को बुरा लगेगा, इसीसे कभी कुछ नहीं कहता।

"परन्तु उन्होंने तो तुझे खलिहान पर भेजा है कि कोई नौकर-चाकर यहाँ से कुछ टरका-टरकू न दे।"

"इसीसे तो सब लोग मुझसे जलते हैं, मैं उनका अफसर हूँ।"

मुझे हँसी आई। बोला—इन बड़े बड़े पूरे आदमियों का तू इतना छोटा अफसर !

सरल विस्मय से उसने कहा—क्यों, क्या छोटा आदमी अफसर नहीं हो सकता ? उस दिन टोप लगाये जंट साहब गाँव देखने आये थे। उनके मूँछें भी नहीं निकली थीं। लोग कहते थे, छोकड़ा है,—ताजा-बिलायत; कोई बात समझता नहीं। फिर भी बड़ी बड़ी भूरी मूँछों वाले झुक झुक कर सलाम करते थे।

"तो तू इन लोगों का ऐसा ही अफसर है ?"

"हाँ भैया, अफसरी में बड़ा मजा है। मैंने कागज का एक टोप बनाया था, इन लोगों ने उसे फाड़फूड़ कर फेंक दिया

है। साहब बन कर कुरसी की तरह कुएँ की जगत पर तनकर मैं बैठ जाता हूँ और हुक्म देता हूँ—तुम काला आदमी, हमारे लिए तमाखू का चिलम भर लाओ।"—कहते कहते हँसी के मारे वह स्वयं लोट-पोट होने लगा।

"फिर तमाखू की चिलम आ जाती है?"

"आती कब है। अपने हरुआ चपरासी को हुक्म देना पड़ता है—पाकड़ो सुअर काला आदमी को; हमारा बात नहीं सुनता।"

"किसीको बुरा नहीं लगता?"

"बुरा क्यों लगेगा, सुनकर सब खुश होते हैं। दिन भर यहाँ यही आनन्द रहता है।"

चुपचाप चलते चलते रामलाल ने नीरवता भंग करते हुए कहा—भैया, सुनो, इस हलका की बदमाशी?

"क्या?—हलका तो सीधा-साधा बड़ा गरीब है।"

"सीधा-सादा नहीं, उसमें बड़े गुन हैं। कल साँझ के झुटपुटे में लोटा लेकर जल्दी जल्दी दिशा के लिए जा रहा था। मैंने झट-से पीछे से उसका हाथ पकड़ कर लोटा औंधा दिया। नीचे जमीन पर सेर डेढ़ सेर गेहूँ फैल गये। मेरे पैर पकड़कर रोने लगा—भैया किसीसे कहना नहीं।

आकर अभी बिनिया कह गई थी, आज दिन में घर पर रोटी नहीं बनी; नाज न था। और सबका दुःख तो देख लिया जा सकता है परन्तु बूढ़ी डोकरी का नहीं। कहती है; जब तक सब न खा लेंगे, मैं न खाऊँगी। इसीसे—। मैंने कहा—डोकरी की माया थी तो नाज बाजार से क्यों नहीं खरीदा? कहने लगा—पैसे हों तब न,—यहाँ तो ऋण के मद्धे काम कर रहा हूँ। उसकी सूरत देखकर मुझे दया तो आ गई, परन्तु है बड़ा बदमाश। मेरी आँखों में धूल डालना चाहता था!"

सुन कर मैं सुस्त-सा पड़ गया। थोड़ी देर चुप रह कर मैंने कहा—तूने यह क्या किया? उसे नाज ले जाने देता। बेचारी बुढ़िया के ऊपर भी तुझे दया न आई!

उसने मेरी ओर ताकते हुए कहा—वाह भैया, तुमने यह अच्छी कही। ऐसा हो तो सबका सब माल यहीं खेत पर से उड़ जाय। नौकर-चाकरों के घर का हाल तो ऐसा होता ही है। तो क्या कोई इसलिए किसीकी चोरी करे? धर्म-कर्म भी तो कुछ है। कई बार मेरे घर भी दिन दिन भर रोटी नहीं बन सकी। परन्तु बप्पा कहते हैं, धीरज धरने से सब ठीक हो जाता है। भगवान् रात रात तक सबका पेट भरते हैं।

रामलाल की कोई बात ऐसी न थी, जिसके विरुद्ध मैं कुछ कह सकता। फिर भी न जानें क्यों उस दिन का मेरा सारा आनन्द क्षण भर में ही कहाँ किस जगह चला गया। मैंने पूछा—कक्का से तो तूने अभी तक यह बात नहीं कही ?

"अभी तक तो वे मुझे मिले ही नहीं।"

"तो अब न कहना।"

रामलाल ने चुपचाप सिर हिला दिया।

५

दिन का विश्राम है रात और रात का विश्राम दिन; परन्तु समय का कोई विश्राम नहीं। न वह दिन देखता है न रात; रात दिन चलते रहना ही उसका काम है। देखते ही देखते दिनों की भाँति कई बरस बीत गये। बड़ों से बच कर, जिनके सामने चिरकाल तक हम बच्चे ही बने रहते हैं,—मैं कहना चाहता हूँ कि बचपन की अवस्था को अब मैं पार कर चुका था। मुन्नी भी अब वह मुन्नी न थी, पहले जिसे मैं हाथों पर लेकर ऊपर उछाल दिया करता था। परन्तु हाँ, रामलाल की प्रकृति हमसे कुछ भिन्न थी। कटकर आती हुई पतंग को देख कर उसे लूटने के लिए अब भी वह पहले जैसा ही चंचल दिखाई देता था। उसका जीवन किसी ऐसे चन्द्रमा के समान था जो नवमी की तिथि तक निरन्तर बढ़कर भी अपनी द्वितीया का बाँकपन नहीं

छोड़ता। सबसे विचित्र तो यह है कि लड़कपन के किसी काम से रोके जाने पर वह निस्संकोच भाव से कह देता—वाह, लड़का नहीं तो क्या अभी मैं बूढ़ा हो गया !

अध्ययन के अति भोजन से मेरी जठराग्नि मन्द पड़ गई थी। इसलिए मैं देखता था कि स्वयं तृप्त हो जाने पर भी अपने भोजनों से माँ को तृप्त कर देने की शक्ति मुझमें न थी। सम्भवतः रामलाल यह बात समझता था। इसलिए इस कमी की पूर्ति वह ऐसे मनोरंजक ढंग से करता कि मुझे बहुत अच्छा मालूम होता। समझ-बूझ कर वह ऐसे समय भीतर पहुँचता जब माँ रसोई घर से बाहर के किसी काम में लगी होतीं।

"माँ, मुझे बहुत भूख लगी है।"

"भूख लगी है तो क्या करूँ, और पहले क्यों नहीं आया ? बाहर घन्टेभरसे बैठा बातें तो बना रहा था ! जा, फिर आना; अभी अवकाश नह ।"—माँ झुँझला कर कहतीं।

"नहीं माँ, सचमुच बहुत भूख लगी है।—तुम नहीं मानतीं तो लो, मैं ये कन्डा-लकड़ियाँ सब साफ किये देता हूँ; रसोई के लिए तुम्हीं तंग होगो।"—कह कर रामलाल किसी लकड़ी का छिलका उचेल कर दाँतों से कुतरने लगता।

इस प्रचण्ड क्षुधा से पराजित होकर माँ को हाथ का काम छोड़ना ही पड़ता।

भोजन करते करते अचानक वह कह उठता—आज तो मंगल है, तुम्हारे व्रत का दिन।

थोड़ी दूर बैठ कर उसका भोजन देखती हुई माँ कुछ रूखापन प्रकट करके कहतीं—है सो क्या करें।

"कुछ नहीं; मैं सोच रहा था, व्रत के दिन तो तुम नाम मात्र का भोजन करती हो। हम लड़कों के लिए ही अच्छे अच्छे व्यंजन बनते हैं।—आज तो आलू का मोहनभोग बना होगा?"

"बना है सो अभी खा तो चुका।"

रामलाल सिर झुकाकर बड़े ध्यान से अपनी पत्तल देखने लगता। कहता—कहाँ माँ, इसमें तो एक किनका भी नहीं है। और जब पत्तल में फिर से मोहनभोग आजाता तो भोला-पन दिखा कर कहता—यह है! यह तो खा चुका था; फिर से व्यर्थ परोस दिया।—और फिर तेजी के हाथ चलाने लगता।

वह केवल भोजन-वीर ही न था काम करने में भी उसकी बराबरी का आदमी मिल सकना कठिन है। जुट जाता तो दो दो तीन तीन आदमियों का काम अकेले ही निबटा देता। फिर भी अभी तक हम उसका पूरा परिचय नहीं पा सके थे।

अचानक एक दिन सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य का वह दिन आ पहुँचा।

मुन्नी की सगाई प्रतिष्ठित कुटुम्ब में सुन्दर वर के साथ हो चुकी थी। हम लोग विवाह की तैयारी में थे। रात के आठ बजे का समय था। हिसाब लगाया जा रहा था कि विवाह के खान-पान के लिए घी कितना चाहिए, शक्कर कितनी और इसी तरह बहुत कुछ। एकाएक घर में आतंक छा गया कि डाकू आ रहे हैं। क्षणिक किंकर्त्तव्यविमूढ़ता के ही अनन्तर ऐसी दुर्घटना का प्रतिकार करने के लिए अच्छी से अच्छी जो तैयारी की जा सकती थी, तुरन्त की जाने लगी। अर्थात् जो भाग सकते थे, भाग कर इधर-उधर जा छिपे और डर के मारे जो स्त्रियाँ और बच्चे इतना भी नहीं कर सकते थे, उन्हें आश्वासन देकर पूर्ण तत्परता के साथ मुहल्ले की ऐसी दरिद्र झोपड़ियों में ले जाकर बिठा दिया गया, जिनके लिए डाकुओं को तो क्या महाजनों और सेठों को भी कोई आकर्षण नहीं हो सकता। लोहे की तिजोरी से निकाल कर सोना-चाँदी और काम के कागज-पत्र भी ऐसे स्थान पर छिपा दिये गये जहाँ से उन्हें फिर प्राप्त करने में रखने वाले को भी कुछ याद करना पड़े। किन्तु यह सब निकल जाने पर भी लोहे की तिजोरी खाली न थी। उसमें सोने-चाँदी की वे नकली चीजें

रख दी गई थीं, जो डाकुओं के तात्कालिक सन्तोष के लिए हमारे ऐसे किसी किसी गृहस्थ के यहाँ, बहुत पहले से तैयार कराके संकट-काल के साथी ब्रह्मास्त्र की तरह आदर के साथ रख छोड़ी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त हमारे यहाँ एक दुनाली भी थी। ढाई तीन हजार की बस्ती में अस्त्र-कानून की यह कृपा हमारे ऊपर ही थी। परन्तु इस कानून ने अहिंसा का जो धर्म सारे के सारे देश पर लाद दिया है उसके संक्रामक प्रभाव से हम लोग भी मुक्त न थे। फिर भी अपनी दुनाली को हम न भूल सके। इस मानसी हिंसा में हमें आपद्धर्म का ही भरोसा था। आपद्धर्म विद्रोही ही सही, है तो धर्म!—अतएव दुनाली के साथ गनपत जमादार सामने वाले घर के ऊपरी खण्ड में ऐसी जगह बिठा दिया गया, आवश्यकता पड़ने पर, जहाँ से डाकुओं के ऊपर अनायास ही गोलाबारी की जा सके।

यह काम तत्परता के साथ इतने शीघ्र किया गया कि कोई भी हममें से किसी पर कर्त्तव्यहीनता का दोषारोपण नहीं कर सकता। वास्तव में हम लोग डाकुओं के लिए बहुत पहले से तैयार थे। डाकू विक्रमसिंह के कारण इन दिनों चारों ओर दूर दूर तक बहुत आतंक था। यह डाकू अभी नया

ही था, इसलिए इसके डर की तीक्ष्णता अभी तक किसीको सह्य नहीं हो सकी थी। भूकम्प की भाँति किसी अलक्ष्य में अपनी तैयारी करके वह किसी भी जगह अचानक प्रकट हो सकता था। प्रत्येक दूसरे तीसरे दिन उसकी किसी न किसी निर्दयता का समाचार सुनना ही पड़ता था। पहले भी दो तीन बार हमारे गाँव में उसके आ पहुँचने के समाचार आ चुके थे। ये समाचार आधुनिक विज्ञान की सहायता के बिना ही क्षण भर में गाँव के इस छोर से उस छोर तक आश्चर्य-जनक रीति से फैल जाते थे। साँझ का दिया जलने के पहले ही सारा का सारा बाजार तुरन्त बन्द हो जाता और घर घर ताले-से पड़े हुए दिखाई देने लगते। अच्छी तरह यह सब हो चुकने के अनन्तर दूसरे दिन मालूम होता—डाकू न थे, हमने तो पहले ही कह दिया था; उनके यहाँ कोई बड़ा मेहमान आया था, उसको उस जंगल में चिड़ियाँ मारते देख कर उस डरपोक ने व्यर्थ ही गाँव भर में हो-हल्ला कर दिया—डाकू आये, डाकू आये! इस बार भी ऐसा ही हो सकता था। परन्तु सम्भावना को ध्रुव मान कर निष्क्रिय बैठ रहना हम बुद्धिमानों का काम नहीं। आपत्ति पहले इसी तरह धोखा देती है और फिर धोखे ही धोखे में अचानक गले आ पड़ती है। विक्रमसिंह के कारण पुलिस भी

कम परेशान न थी। बराबर वह उसका पता लगा रही थी। गाँव के दारोगा मुझे एक दिन अचानक मिल गये। टहलने के समय भी उसीकी बात उनके भीतर चक्कर काट रही थी। मुझसे पूछने लगे—भाई, तुम तो बताओ, यह विक्रमसिंह कौन है और इसका पता कैसे लगे ?

मैंने कहा—हाँ मैं बता सकता हूँ। सुन कर दारोगा साहब की आँखें आनन्द से चमकने लगीं। शीघ्रता से कहने लगे—हाँ बताओ भाई, बताओ। मैंने उत्तर दिया-सुनिए; विक्रमसिंह डाकू है और उसका पता लगाने का ढंग यही है जो आप इस समय कर रहे हैं। मुझ जैसे आदमियों को छोड़ कर आप उसका पता दूसरी जगह नहीं पा सकते।

दारोगा साहब झेंप गये। बोले—नहीं नहीं, मेरा मतलब यह न था। आप लोग भी क्या,—जरा जरा सी बात पर नाखुश हो जाते हैं !

६

मेरे घर से चालीस-पचास गज की दूरी पर दीना कोरी का घर था। अधिक सुरक्षित समझ कर माँ को वहीं पहुँचा दिया गया। दो घन्टा चुपचाप डाकुओं की प्रतीक्षा कर लेने पर भी जब किसी ओर से पत्ता भी उड़कर नहीं आया, तब निश्चिन्त होकर मैं माँ को देखने चला। 'दीना, दीना!' कह कर मैंने बाहर सड़क पर से आवाज दी। डाकुओं की निशाचरी माया से वह अच्छी तरह परिचित था। इसलिए कचहरी के नियमानुसार जब तक अपने निश्चय की मिसिल का पेटा 'कौन, क्या और किसलिए' के उत्तरों से भर न लिया, तब तक स्वर पहचान कर भी उसने घर के किवाड़ नहीं ही खोले।

माँ ने मुझे देख कर पूछा—तू इधर-उधर क्यों फिर रहा है?

मैंने कहा—माँ, डर की कोई बात नहीं, मैं सावधान हूँ। यही देखने के लिए चला आया था कि तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं।

"अच्छा तो फिर यहीं बैठ जा, अकेले अच्छा नहीं लगता"—कह कर माँ ने मुझे वहीं बन्दी कर लिया।

बैठ कर मैंने दीना का घर इधर-उधर देखा। छोटी छोटी कोठरियों के बीच में बहुत छोटा आँगन था। उसके एक कोने में पानी-भरे मिट्टी के दो तीन घड़े रक्खे थे; उसी तरह के, जैसे मेरे ढोरों वाले घर में गोबर थापने के लिए मैली-कुचैली हालत में एक ओर पड़े रहते हैं। घड़ों के नीचे से फैल कर पानी ने आस-पास चारों ओर काफी कीचड़ कर रक्खा था; इसलिए घड़ों तक पहुँचने के लिए ईंटें रख कर, उनका एक छोटा पुल-सा बना दिया गया था। आँगन के कोने में घर का बरसाती पानी बाहर निकालने के लिए नाबदान था। आज कल जितना पानी सूर्य से जबर्दस्ती छीनते बनता, उसे छोड़ वह एक बूँद भी अपने गोदाम से बाहर न जाने देता था। थोड़ी ही देर में उसकी दुर्गन्ध से मेरा सिर भिन्नाने लगा।

हाथ में कुछ लिए हुए दीना ने आकर कहा—भैया, तनिक उठो तो, मैं इसे बिछा दूँ। नीचे जमीन गड़ती होगी।

मैंने देखा, उसके हाथ में एक गन्दी कँथरी थी; न जाने कितनी पुरानी, जिसके सर्वाङ्ग में गलित कुष्ट ऐसा कुछ था। मैंने उस ओर से मुहँ फेर कर कहा—आवश्यकता नहीं। मैं ठीक बैठा हूँ।

पास बैठ कर दीना बातचीत करने लगा। बोला—भैया, विक्रमसिह को मैंने देखा है।

उत्सुक होकर मैंने पूछा—कहाँ, कब?—और तुमने उसे देखा तो इसकी खबर थाने में क्यों न दी?

वह कुछ घबरा-सा गया। बोला—नहीं भैया, उसके लिए इस तरह नहीं कहना चाहिए। उसे देवी का इष्ट है। वह सब जान जाता है कि कौन कहाँ उसके बारे में क्या कह रहा है। यह सब झूठ है कि उसके साथ सौ दो सौ आदमी हैं। जब चाहता है, तभी माया के आदमी खड़े कर देता है। थानेदार तो क्या उसे अँगरेज भी नहीं पकड़ सकता।

मैंने प्रश्न किया—तुमने उसे देखा कहाँ?

वह कहने लगा—मैं नदी के उस पार से आ रहा था, जंगल में ही मुझे रात हो गई। भूतों वाली महन्त की बावड़ी के पास पहुँच कर मैंने देखा कि बड़ के नीचे एक बढ़िया पहाड़ी घोड़ा बँधा है। पूँछ और सिर हिलाकर हिन-

हिनाता हुआ जमीन पर टापें पटक रहा है। मैंने मन में कहा—छल है! और महावीर का सुमिरन करने लगा। सामने ही कारतूसों की पेटी पहने और बगल में बन्दूक लटकाये हुए दो लम्बे-तड़ंगे जवान दिखाई दिये। डर के मारे मेरी सांस रुक गई। मुझे चुपचाप आगे बढ़ते देख उनमें से एक ने कहा—'इस आदमी को पकड़ लो'। दूसरे ने हँसकर उत्तर दिया—'यह भी कोई आदमी है; इससे मक्खी तक तो मर नहीं सकती।' दौड़ कर जब तक अपने गाँव की मेंड़ पर नहीं आ गया, तब तक फिर मैंने साँस तक नहीं ली।

"तो फिर तुमने यह कैसे जाना कि विक्रमसिंह वही था?"

"वाह भैया, यह तुमने खूब कही! क्या मैं इतना भी नहीं जान सकता? मैं बाजी लगा कर कह सकता हूँ कि विक्रमसिंह को छोड़कर वह और कोई हो ही नहीं सकता। उसके तेज से मेरी आँखें झँप गईं!"

इस सम्बन्ध में उससे कुछ कहना व्यर्थ था। चुपचाप बैठा बैठा मन ही मन न जानें मैं कितनी बातें सोचने लगा। दीना की यह झोपड़ी मेरे रहने के घर की सीमा में ही आ सकती है, परन्तु आज के पहले मेरी आँखें इसे

अच्छी तरह देख भी न सकीं। मैं जिस दुर्गन्ध में दो मिनट भी नहीं बैठ सकता, वह इसका घर है, वह इसका सौभाग्य है और इस सौभाग्य के कारण न जानें यह कितनों की ईर्ष्या का पात्र है! इस कोरी के पूर्वजों के बनाये हुए वस्त्र न जानें कब से मेरे वंश के गौरव और प्रतिष्ठा की वृद्धि करते आये हैं, आज इसीके घर की यह अवस्था। जिस वस्त्र पर प्रति दिन यह सुख के साथ सो सकता है, वह इतना मैला-कुचैला और कदर्य है कि उसकी एक झलक भी धूल के झोंके को तरह, मेरी आँखों को उस ओर टिकने नहीं देती। इस घर की छोटी से छोटी वस्तु में भी एक इतिहास है, एक कहानी है; फिर भी मैं कुछ नहीं जानता। विदेशी साहित्य के कितने ही किसान-मजदूरों से मेरा परिचय है। उनकी विपत्ति-गाथा से आँखों में आँसू भर कर बीसियों बार मन ही मन मैं अपनी सहृदयता के दम्भ का अनुभव कर चुका हूँ। परन्तु मेरे लिए इस दीना के पास ऐसा कुछ नहीं जो मुझे उसकी ओर आकर्षित कर सके। विलासिता की अगणित वस्तुओं की भाँति, हमारी करुण-भावना को जागृत करने के लिए दरिद्र और दुःखी भी बाहर से ही आने चाहिए। शिक्षित होकर हमने यही सीखा है!

एकाएक मेरा मन न जानें कैसा हो उठा। उत्तेजित होकर सोचने लगा—भला हो इस विक्रमसिंह का! इसके कारण हमें आज अपने एक पड़ौसी को इस तरह देखने का मौका तो मिला। इसके अन्ध विश्वास और कायरता की हँसी उड़ाने का हमें कोई अधिकार नहीं। हथियार-बन्द दो चार डाकुओं के आने की खबर से ही अवसन्न और अर्द्धमृत हुए सारे के सारे जिस गाँव के ऊपर अँधेरे की कालिख पुत गई है, उसमें जो स्थान दोनों का है वही मेरा। आ भाई विक्रमसिंह, आ! तेरे लिए अस्त्र-कानून की कोई बाधा नहीं। यदि तेरे लिए एक बन्दूक यथेष्ट न हो तो आवश्यकतानुसार दूसरे अस्त्र लाकर आज ही इस गाँव को धुएँ के साथ उड़ा दे। तुझ पर आज किसी भी निर्दयता का दोषारोपण कर सकने का मेरा मुहँ नहीं।

मेरी इस चंचलता का अनुभव माँ ने उस अँधेरे में भी कर लिया। बोलीं—बैठा बैठा इस तरह क्या सोच रहा है।

आह यह कण्ठ-स्वर! इसके सामने मेरी कोई भी उद्दण्डता नहीं टिक सकती। मृदु होकर मैंने कहा—कुछ नहीं, मैं तनिक बाहर जाना चाहता हूँ।

"तो मैं भी चलती हूँ"—कह कर माँ मेरे ही साथ उठ खड़ी हुईं।

घबरा कर दीना कहने लगा—हैं हैं माई ! यह क्या करती हो ? बैठो भैया, बैठो। तुम बाहर निकले और विक्रमसिंह प्रकट हुआ। उसे महावीर का इष्ट है। आज मंगलवार है न, डाके का दिन। तुम्हें ऐसा लड़कपन न करना चाहिए।

७

"भैया, तनिक किवाड़ तो खोलो।"

रामलाल का स्वर था। दीना के कुछ कहने के पहले ही मैंने झट-से जाकर किवाड़ खोल दिये। भीतर आते ही हम लोगों को देख कर वह हँसने लगा। चिढ़ कर मैंने पूछा—है क्या ?

"कुछ नहीं, आज मुझे यों ही हँसी आ रही है। तुम्हारे पास दियासलाई हो तो दो। मोहना से लड़-झगड़ कर एक बीड़ी छीन लाया हूँ। बड़ी देर से तमाखू नहीं पी।"

माँ झुँझला पड़ीं। बोलीं—इस तरह इधर-उधर क्यों फिर रहा है। घड़ी भर तमाखू न पीने से क्या तेरी जीभ गिर जाती ?

रामलाल ने हँसते हँसते कहा—लो माँ, तुम नाखुश होती हो ! मैं कहता हूँ डाकू-वाकू कहीं नहीं हैं। कसीने

हँसी की है। मैं तो बराबर घूमता रहा हूँ। दादा किसान की पौर में हैं। माँई पूरब वाले भुस के घर में हैं। मैं वहाँ गया था। रहने वाले घर में उनका कोई गहना रह गया है। उसे ले आने के लिए वे बड़ी उतावली मचा रही हैं। आज सबकी धजा विचित्र है। मुझे तो बड़ी हँसी आ रही है। परन्तु माँ, तुम बिलकुल न घबराओ। डर की कोई बात नहीं। एक विक्रमसिंह की तो क्या—

दीना ने रोषदृष्टि से उसकी ओर देखा। मुझे भी इस समय उसका यह बातूनी जमा-खर्च अच्छा न लगा। मैंने कहा—जोर से क्यों चिल्लाता है। और तो कोई नई खबर नहीं?

अपना स्वर धीमा करते हुए उसने कहा—मैंने कहा नहीं, कहीं से कोई खबर आने की नहीं है। डाकू इस तरह ढोल पीट कर किसीने आते सुने हैं? हाँ, गनपत को कुछ काम था। चला गया है। कहता था—अभी लौटकर आता हूँ।

गनपत पर मुझे बहुत विश्वास न था। गरम होकर मैंने पूछा—क्या बन्दूक भी साथ ले गया है?

"नहीं, भला बन्दूक मैं कैसे ले जाने देता। मैंने वहीं ऊपर के कोठे पर रखवा ली है। अभी आता है। मैं उसके

साथ ही था।"—कह कर वह वहीं बैठ गया और दिया-सलाई सुलगा कर बीड़ी पीने लगा।

बैठे बैठे मुझे एक एक क्षण भारी जान पड़ने लगा। मैं एक दम उठ पड़ना चाहता हूँ; परन्तु जान पड़ता है, ऊपर के शून्य में समय का प्रत्येक क्षण घनीभूत होकर मुझे जोर से नीचे को दबा रहा है और मैं इधर-उधर हिल-डुल भी नहीं सकता। ओ शिक्षाभिमानी मूर्ख, तू समझ रहा है, डाकू अभी तक नहीं आये। यह तेरी भूल है। वे आ चुके हैं, अपने समाचार के साथ ही। आकर उन्होंने तेरा जो कुछ लूट लिया है, तू यदि उसे समझ सका होता तो कभी का पागल हो जाता। उस लूटे हुए के सामने तेरे बचे हुए धन, जन और जीवन का मूल्य इतना भी नहीं, जितना सड़क पर पड़े हुए उस पत्थर का, जिसके प्रतिघात के डर से ठुकराने वाले भी उसे आदर के साथ ही धीमे पैरों ठुकराते हैं।

"सुनो भैया, कुछ सुनाई पड़ रहा है"—मुझे जगाने के-से भाव से मेरे ऊपर हाथ रखता हुआ रामलाल बोला उठा—"डाकू आ गये!"

एक क्षण के लिए मैं सन्न-सा रह गया। परन्तु दूसरे ही क्षण मुझे जान पड़ा, जैसे मेरे शरीर के ऊपर से कोई बोझ उतर गया। डाकू आगये, अच्छा ही हुआ! ऐसा न होता तो

आज की इस लज्जा का बोझ जीवन भर मैं अपने मन के ऊपर किस प्रकार वहन कर सकता ?

थोड़ी ही देर में किसी अत्यावश्यक काम से जाने वाले तीन चार आदमियों का एक झुण्ड पद-शब्द करता हुआ तेजी से सड़क पर से निकल गया और फिर वैसी ही नीरवता छा गई।

मैं क्रुद्ध हो उठा। इच्छा हुई रामलाल से लड़ बैठूँ। मूर्ख कभी तो कहता है, डाकू-वाकू कोई नहीं आने के और कभी सड़क पर मामूली आने जाने वालों की भी आवाज सुनकर कहने लगता है—डाकू आ गये! एक चाँटा जड़ दिया जाय, बस तबियत ठीक हो जायगी। परन्तु क्रोध भी इतना जानता है कि यह मौका लड़ने-झगड़ने का नहीं, चुपचाप शान्ति से बैठे रहने का है। समय पहले की ही तरह बीतने लगा।

सहसा एक बन्दूक का धड़ाका हुआ। हम सब एक साथ चौंक पड़े। पक्षी न होने के कारण ही हम वहाँ के वहीं बैठे रह सके, नहीं तो फड़-फड़ करके उसी समय आसमान में उड़ गये होते। इसके थोड़ी ही देर बाद बाहर सड़क पर पड़-पड़ करते हुए तेजी से दस बीस आदमियों के निकलने का बोध हुआ। एक मिनट के भीतर ही आदमियों का

वह दल मेरे रहने के द्वार पर पहुँच कर रुक गया। ये डाकू हैं, इस बात में सन्देह का अब कोई कारण नहीं।

रामलाल का लड़कपन !—किवाड़ के पास जाकर वह उनकी सन्धियों में से डाकुओं को देखने का प्रयत्न करने लगा। दीना ने बढ़ कर झट-से उसे पीछे खींच लिया। "ठहरो तो, देखने दो"—कह कर वह फिर आगे बढ़ गया। मैंने मन में कहा, शोर करके आज यह हम सबको फँसा देगा। क्यों मैंने इस बेवकूफ को अपने पास रहने दिया ?

एक क्षण इसी तरह और, फिर एकाएक 'पकड़ो, इस स्त्री को पकड़ो' की आवाज; लोगों का इधर-उधर दौड़ना-फिरना; किसीको पीटने का धमाका और साथ ही साथ नारी-कण्ठ का चीत्कार ! किवाड़ पर से अपना सिर हटा कर हम लोगों की ओर झुकते हुए रामलाल ने धीरे से कहा—डाकुओं ने माँई को पकड़ लिया। अपना छूटा हुआ गहना ले आने के लिए निकली होंगी; किन्तु बीच में ही डाकू आ गये, इसीसे भाग कर छिप न सकीं।

क्रोध के मारे मेरा तालू सूखने लगा। माँई को गहने की बड़ी ममता है, अब उनके लिए दें अपने प्राण ! मैं इन डाकुओं की निर्दयता सुन चुका था। गृहस्थों के

स्त्री-पुरुषों को पकड़ पाते हैं तो धन बता देने के लिए क्रूर से क्रूर अत्याचार करने में भी उन्हें हिचक नहीं होती। तेल में डूबे हुए लत्ते हाथ-पैरों में बाँध कर उनमें आग लगा देना तो कोई बात ही नहीं; और भी वे जो कुछ करते हैं, उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। माँई ने जैसा किया, उसका फल उन्हें भोगना ही पड़ेगा। इसमें किसीका क्या वश। किन्तु उत्पीड़न सह सकने में असमर्थ होकर उन्होंने कहीं हम लोगों का पता बता दिया तो क्या होगा? हैं तो आखिर औरत ही; हिम्मत ही उनमें कितनी। ऐसी ही न जानें कितनी बातें मेरे मन में एक साथ चक्कर काट गईं और मुझे जान पड़ा कि मेरा दम घुटा जा रहा है।

उधर माई चीत्कार कर रही थीं, इधर माँ भी चिल्ला पड़ीं—"बचाओ, कोई भौजी को बचाओ!" मुड़कर उनकी ओर देखा तो जान पड़ा कि अचेत होकर धरती पर गिरने ही वाली हैं। जब तक मैं उन्हें सँभालूँ-सँभालूँ तब तक दृढ़ कण्ठ से "माँ को देखो!" कह कर किवाड़ खोलता हुआ रामलाल तीर की तरह बाहर निकल गया। दीना ने झट-से किवाड़े बन्द कर दिये और हम लोगों के लिए दरवाजा रोक कर खड़ा हो गया। परन्तु कदाचित इसकी आवश्यकता

न थी। मैं समझता हूँ, उस समय कुछ देर के लिये चेतना ने मेरा साथ छोड़ दिया था।

बन्दूक की आवाज, एक, यह दो। क्षण भर बाद फिर एक, और यह दो! तत्काल ही मुझे अनुभव हुआ, डाकुओं का दल तितर-बितर होकर भाग रहा है; जो जितने जोर से भाग सकता है, दूसरे को चिन्ता छोड़ कर भाग रहा है। बीच बीच में रामलाल की पागलों जैसी 'जै काली माई की!' और उसकी बन्दूक का फैर।

थोड़ी ही देर बाद मेरे घर के आगे आधे गाँव की भीड़ थी। रामलाल अपने आपे में न था और उसका सारा शरीर काँप रहा था। बन्दूक एक ओर रख कर वह दीवार से टिक गया। 'भीड़ हटाओ, भीड़ हटाओ; रमला को गरमी लग रही है; पंखा लाओ!' की धूम पड़ गई। पास खड़ा हुआ एक आदमी उसे अपनी पिछौरी से हवा करने लगा।

प्रकृतिस्थ होकर रामलाल ने कहा—बन्दूक से एक डाकू मर गया है और वे लोग उसका सिर काट ले गये।

सब के चेहरे का रंग एक साथ उतर गया। रामलाल कहने लगा—वे लोग माँई के हाथों में कपड़ा लपेट कर आग लगाना चाहते थे। बन्दूक ऊपर के कोठे पर थी। जब तक डाकू मेरी ओर देखें-देखें, तब तक जीने के किवाड़

खोल कर मैं ऊपर दौड़ गया और मैंने बन्दूक चला दी। मैं किसीको मारना नहीं चाहता था। उन्हें डरा देने के लिए ही मैंने यह किया।

८

पुलिस के आने में आध घन्टे की भी देर न लगी। मालूम हुआ डाकुओं को पकड़ने के लिए ही वे लोग दूसरी ओर गये थे। उन्होंने ऐसा अच्छा इन्तजाम किया था कि आज एक भी डाकू न भाग सकता। रमला की बेवकूफी से ही सब चौपट हो गया। इस बात की शिकायत बड़े साहब से की जायगी, हम लोगों से यह भी छिपा न रह सका!

यह बिना सिर की लाश किसकी है; रमला की रंजिश का कोई शख्स तो नहीं? डाकू किस तरफ से आये, किस तरफ से गये, किस किसने उन्हें देखा, और भी ऐसी बीसियों बातें थीं जिनकी जाँच करते-करते पुलिस ने सबेरा कर दिया। कोई न कोई लाश पहचान ले और सब बदमाशों का पता अभी लग जाय, इसके लिए भी दरोगा साहब ने कम प्रयत्न नहीं किया। चमारों को पकड़ बुलाना, देर से

आने के लिए उन पर हंटर फटकारना और लाश हटवा कर यथास्थान भिजवाना, आदि सब काम वे बराबर बिना थके सवेरे तक करते रहे।

पुलिस और गाँव के दूसरे आदमियों ने पिण्ड छोड़ा तब जान पड़ा कि अब इतनी देर बाद डाकुओं से त्राण मिला है। इसके अनन्तर हम सबको ऐसे अवसाद ने आ घेरा मानों यह किसो ऐसी कुश्ती के बाद का समय है, जिसमें एक पहलवान ने दूसरे बहुत बड़े पहलवान को अचानक अपने दाँव में पाकर चित्त तो कर दिया है, परन्तु अत्यन्त निःशक्त हो जाने के कारण स्वयं वह एक आनन्द-ध्वनि भी नहीं कर सकता।

रामलाल किसी काम से घर के भीतर जा रहा था, अचानक परसादी ने आगे बढ़कर उसे बीच में ही रोक दिया—ठहर रमला, भीतर न जा।

रामलाल ने उसके टोकने के ढंग से क्रुद्ध होकर कहा—क्यों,—रोकने वाले तुम कौन होते हो?

पिंजड़े में बन्द हो गये बाघ की दहाड़ सुनकर जिस प्रकार हमें कुछ बुरा नहीं मालूम होता और हम हँसने लगते हैं, रामलाल के क्रोध से परसादी को वैसी ही हँसी आई। उसे संयत करते हुए उसने कहा—नाराज न हो,

सुनो। तुम्हें मैंने नहीं रोका, दादा ने रुकवाया है। तुमने एक आदमी की हत्या कर डाली है। अब इसके प्रासचित्त में तुम्हें गंगाजी जाना पड़ेगा, सत्तनारायन की कथा करानी पड़ेगी, तब ब्रह्मभोज देकर किसीके यहाँ आ जा सकोगे। यह घर तो मालिक का है, इस समय तुम अपने घर में भी नहीं घुस सकते। तुम अपने घर के भीतर घुसे और तुम्हारे कुटुम के कुटुम को घिसटना पड़ा; अभी तो अकेले तुम्हारे ऊपर ही दोष है। बिरादरी की बात है लल्ला, हँसी-खेल नहीं!

क्रोध में भर कर रामलाल पीछे लौट पड़ा। बोला—बिरादरी की क्या धौंस देते हो? जो लोग ईसाई या मुसलमान बन कर तुम्हारी बिरादरी की खबर जूते से लेते हैं, उन्हींको तुम मानते हो।

परसादी ने उत्तर दिया—ईसाई या मुसलमान नहीं, तुम भंगी हो जाओ, बिरादरी से तो तुम्हारा कोई वास्ता न रहेगा।

भीतर से निकल कर मैंने देखा, रामलाल जा रहा है। पुकार कर मैंने कहा—रामलाल! अकेला क्यों जा रहा है, मैं भी तो तेरे साथ हूँ।

मेरी सहानुभूति पाकर वह लौट आया और एक जगह बैठ कर आँसू गिराने लगा। बोला—भैया, दादा ने घर के

भीतर घुसने से मना करा दिया। अब मैं क्या मुहँ लेकर यहाँ रहूँ। तुम्हीं कहो भैया, मैंने पाप किया है ?

पाप ?—हाँ, पाप नहीं तो और क्या ! सियार की जाति का होकर सिंह का काम कर बैठा, यह पाप नहीं तो और क्या है। भीतर की ओर आवाज देकर मैंने कहा—माँ यहाँ आकर इस परसादी की बात तो सुन जाओ !

परसादी कहने लगा—मैंने ऐसा इससे कहा क्या, जो यह इतना बिगड़ता है। दादा ने रुकवाया, मैंने रोक दिया। इसने जिसे मार डाला है, न जानें वह ब्राह्मण था या कौन। उसके शरीर पर जनेऊ था। अब हत्या का पाप न लगेगा तो और होगा क्या। दादा तो शुद्ध सुभाव के हैं, देवता। वे ऐसे पाप की ओर से आँखें कैसे फेर लें। हाँ वे इसके गंगाजी जानें, ब्रह्मभोज कराने आदि का खर्चा देने को तैयार हैं, फिर भी आँखें दिखा रहा है। समय की बात है !

माँ को देख कर रामलाल ने दूर से ही हाथ जोड़े। माँ ने कहा—वहाँ क्यों बैठा है ? भीतर मेरे पास आ।

उसे स्थिर ही देख कर उन्होंने फिर कहा—आ, उठता क्यों नहीं ?

रामलाल को उठते देखकर परसादी झट-से बोल उठा—माँ, दादा ने रुकवाया है।

माँ ने घोर कण्ठ से कहा—हाँ, सुन लिया। आ रामलाल, मैं कहती हूँ तू आ।

माँ के पैरों पर सिर रख कर वह रोने लगा। उसे प्रकृतिस्थ करके माँ ने कहा—रोता क्यों है, तुझसे कोई पाप नहीं हुआ। यदि अनजान में कुछ हुआ भी हो तो चल, ठाकुरजी के दर्शन करके चरणामृत ले ले; फिर कुछ डर नहीं।

६

धार्मिक कृत्यों में विवाह ही एक ऐसा कृत्य है, जिसका सुफल आँखों से प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इसकी सुकृति के कारण ही हम हिन्दू किसी न किसी तरह इससे पार पा जाते हैं। नहीं तो बरात, बराती और घरातियों के सन्निपात में पड़कर आज एक भी लड़की वाला जीवित न दिखाई देता।

मुन्नी की बरात आने के दो दिन पहले से हमारे घर में किसीको बात करने की फ़ुर्सत न थी। फिर भी बातों के संघट्ट में सुनने वाले बहरे-से हो उठे। मानों स्वयं कर्म-देवता ही उस कर्म-कोलाहल में अपने पुजारियों की निष्ठाहीनता पर क्रुद्ध होकर निरन्तर चीत्कार करता हुआ अपना गला फाड़ रहा था!

स्त्रियों के मंगल-गान के बीच में शहनाई बज उठी और धूमधाम के साथ वर की पालकी हमारे घर के

वन्दनवारों से सजे द्वार पर आ खड़ी हुई। दादा ने आगे बढ़ कर वर के माथे पर रोली अक्षत का टीका किया और एक वस्त्र पर रक्खी हुई अपनी सामान्य भेंट उसके उद्यत करों पर रख दी। इसके बाद उसके पैर छूते हुए जब उन्होंने समागत बरातियों को भी झुक कर हाथ जोड़े, तब मैंने देखा, उनकी आँखों में प्रेमातिरेक के आँसू थे।

अन्य प्रारम्भिक विधियाँ हुईं और आंशिक विश्राम के लिए बरात जनवासे चली गई।

मुझे बरातियों का उद्धत अहंकार पीड़ा पहुँचाने लगा। दादा के विनम्रता पूर्ण प्रेम की ओर देखने का उनमें से किसीको अवकाश न था। सब लोग एक दूसरे को ठेलते हुए तिलक में दी हुई निधि देखकर तत्काल उसका मूल्य-निरूपण कर लेना चाहते थे। जिन्होंने दादा की वह विनयशीलता देखी भी होगी, उन्होंने उसे उनकी स्वाभाविक दीनता का ही प्रमाण समझा होगा। अपनी इस धारणा से मुझे कष्ट होने लगा। यदि दादा के हृदय में प्रेम और आँखों में आँसू हैं तो वे क्यों उन्हें इस तरह धूल में गिराते फिरते हैं? योग्या-योग्य का भी तो कुछ विचार होना चाहिए।

लड़के को देख कर सब लोग बहुत सन्तुष्ट हुए। निश्चय ही वह सुन्दर और शरीर से हृष्ट-पुष्ट था। परन्तु

एक झलक में ही उसे देख कर मेरा जी न जानें कैसा होगया। दादा ने उसके पैर छूने के लिए अपने हाथ बढ़ाये तो झट-से उसने अपने पैर कुछ आगे खिसका दिये। उसे किसी तरह का दिखाऊ संकोच भी न हुआ कि मेरे पिता की अवस्था के कोई यह क्या करते हैं। दादा के इस शिष्टाचार के समय तिलक में दी जाने वाली भेंट-सामग्री की ओर ही उसकी लोलुप दृष्टि थी। हाय!

परन्तु नहीं, आज मैं अपने मन में किसी तरह की कटुता को न टिकने दूगा। किसीकी हीनता और दुर्बलता पर घृणा करने का हमें क्या अधिकार, जब कि हम सब किसी न किसी दशा में समान रूप से ही दुर्बल हैं। आज मेरा मन पीड़ित हो उठा है, परन्तु मैं इस पीड़ा को जीतने का प्रयत्न करूँगा। बहिन, आज की मेरी उस दुर्भावना के लिए तू मुझे क्षमा कर। किसी तरह भी हो, मुझे आज तेरे स्वामी को प्यार करना ही चाहिए। उसकी समस्त न्यूनता के लिए क्षमा करके मैं उसे आशीर्वाद करना चाहता हूँ कि वह तेरे योग्य हो और अपने को पीड़ा पहुँचाये बिना ही मैं उसे प्यार कर सकूं। स्वयं तेरे लिये मुझे कुछ नहीं कहना। जिस तरह देवी की प्रतिमा मन्दिर के पीछे नहीं चलती, मन्दिर ही उसके पीछे चलता है; उसी तरह जिस घर में भी

तू पहुँच जायगी, वही तेरे अनुरूप हो उठेगा। फिर भी यदि मुझमें कुछ भी बड़ा है तो मैं तुझे भी आशीर्वाद देता हूँ। बस और कुछ नहीं।

मेरी आँखों से टप टप आँसू गिर पड़े।

रात को पाणिग्रहण संस्कार सकुशल सम्पन्न हो गया। मेरी नालायकी किसीसे छिपी न थी; इसलिए मेरे जिम्मे कोई विशेष काम न था। किताबी कीड़े से काम का कोई काम हो भी नहीं सकता। काम की भीड़ में जाकर किताब के धोखे वह आदमी को ही काटने लगता है। काम के बहुत कुछ निर्विघ्न होने में लोगों के इस गूढ़ ज्ञान ने भी सहायता पहुँचाई। नहीं तो मैं समझता हूँ, किसी न किसी बराती से उलझ कर कोई न कोई बखेड़ा मैंने अवश्य खड़ा कर दिया होता।

परन्तु हमारा कोई विवाह बिना बखेड़े के पूरा पड़ जाय, यह असम्भव है। इतिहास काल के पूर्व हमारा जो पुराण-पुरुष जंगलों में दिगम्बर वेश में रहता था, वह जन्मजात क्षत्रिय था। अपने अस्त्र-शस्त्रों से कन्या-पक्ष को मृतप्राय करके कन्या को जीत कर लाने में ही उसका गौरव था। अपने पूर्वज के उस वीर-दर्प को, सूक्ष्म रूप में ही सही, अपनी अगणित परम्पराओं में सुरक्षित रख सकने का

गौरव केवल हमींको है। अचानक विशेष रूप के गर्जन-तर्जन को सुनकर मैं घटना-स्थल पर दौड़ा गया।

पहुँच कर देखा, सब बराती एक दम उठ खड़े हुए हैं। उनका इस तरह उठ खड़ा होना असहकार की वह भयंकर चोट है, जिसके मारे बड़ी बड़ी सरकारें तक तिलमिला उठती हैं; अपने आप मर रहे लड़की वाले की बात ही क्या। एक आदमी क्रोध से चिल्ला रहा था—तुम्हारे आदमी ने हमारे आदमी को गाली दी है। हम यहाँ गाली सुनने के लिए नहीं, लड़का ब्याहने के लिए आये हैं!

दूसरा कह रहा था—मैं होता तो साले का खोपड़ा फोड़ देता।

तीसरा अधिक शान्त था, कह रहा था—चलो जी चलो, डेरे में चल कर बिस्तरे बाँधो। ऐसे नीचों के मुहँ लगकर अपनी जबान खराब करने से क्या लाभ?

चौथे ने उत्तर दिया—भंगी-चमार तो बन चुके, अब बिस्तरे न बाँधोगे तो क्या करोगे?

उस विकट कोलाहल में बड़ी देर बाद समझ पाया कि रामलाल ने बरात के एक खवास की हुक्म-उदूली की है; उससे कह दिया है कि, 'भंगी हो या चमार, बरात में जो कोई भी आता है, दूल्हा का बाप ही बन कर आता है।' मेरे

प्रतिहिंसातुर मन को यह बात बहुत अच्छी लगी। परन्तु उस समय हमारे पक्ष के सब लोगों को 'पुनः पुनः' पड़ रही थी, इसलिए मेरे इस अच्छे लगने का कुछ मूल्य न था। हमारे यहाँ के सब बड़े-बूढ़े, बरातियों की जूती के चाकर और न जानें क्या क्या बन कर बड़ी कठिनता से वह आग ठंढी कर सके।

मुझे अनुभव था कि डाकुओं के आक्रमण वाले दिन से रामलाल का मिजाज गरम हो गया है। परन्तु इस मामले में मेरी सहानुभूति उसीके साथ था। मैं स्वयं देख चुका था कि बरात का वह खवास अपने को न जानें कहाँ का नवाब समझता है। बरात के डेरे से किसी काम के लिए आता है तो उसके मिजाज ही नहीं मिलते। रामलाल ने उसे पीट नहीं दिया, इसे उसकी शिष्टता ही समझनी चाहिए। तीन दिन से बिना एक झपकी लिये वह लगातार रात-दिन काम कर रहा था और उसका परिणाम यह कि चारों ओर से उस पर फटकार पड़ रही थी।

मैंने उसे बुला कर पूछा—रामलाल, बात क्या हुई?

उसने कहा—कुछ नहीं भैया, मुझसे भूल हो गई।

मुझे रामलाल से ऐसे उत्तर की आशा न थी। मैं बहुत दिनों से देखता आता था कि किसी बात पर दीन बन कर

क्षमा माँगना उसे आता ही नहीं। माँ के लाड़ ने उसके जी से यह बात एक तरह भुला ही दी थी कि वह छः सात रुपये का एक मामूली नौकर है। उसके अपनी बात पर अड़ जाने के हठ पर कभी कभी मुझे क्रोध आता था। परन्तु ऐसा नहीं कि उससे मुझे कभी आनन्द भी न हुआ हो। उस समय मुझे जान पड़ता था कि यह मेरी माँ की ही कोमलता है जो इस तरह कठोर बन कर मेरा सामना कर रही है। फिर आज की बात में मेरी समझ के अनुसार उसका दोष भी बहुत न था। मैंने कहा—तुझसे भूल क्या हुई, वास्तव में ये सब के सब बराती ही कमीने हैं।

आगे के कमरे में वर पक्ष के कुछ लोग बैठे थे। उनको ओर संकेत करके उसने जीभ काटते हुए कहा—नहीं भैया, ऐसी बात न कहो। कैसे भी हों, हमें उनके पैर ही पूजने चाहिए। वे बड़े हैं, तभी तो हम उन्हें अपनी बहिन सौंप रहे हैं।

अपनी बहिन!—आह, कैसा है इसके हृदय में बहिन का यह प्रेम, जिसने इसके उद्धत अहंकार का फन भी इस प्रकार नत कर दिया। संसार अंधा है; तभी तो उसकी दृष्टि में स्नेह और आत्मीयता की इस विशालता का मूल्य छः सात रुपये मासिक से अधिक नहीं।

मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही धीर गति से अपने काम पर वह ऐसे चला गया, मानों उसकी बात का कोई विरोध हो ही नहीं सकता।

१०

सन्ध्या समय भोज था। गाँव के निमन्त्रित इष्टमित्र और फालतू खाते के दूसरे आदमी यथासमय आकर उपस्थित हो गये। परन्तु बार बार बुलावे भेजे जाने पर भी बरातियों के आने के कोई लक्षण न दिखाई दिये। कुछ लोग गाँव के बाहर एकान्त कुएँ-बावड़ो पर भंग-ठंढाई छाननें चले गये थे, और कुछ इधर-उधर किसीसे मिलने-जुलने। समय की निष्ठा और बरातियों से क्या सम्बन्ध? कचहरी की पुकार एवं अन्य ऐसे ही बहुत-से अवसरों पर। हममें से बहुतों को दस की जगह आठ बजे ही प्रायः निरन्तर जाना पड़ता है। फिर सुयोग पाकर एक दिन के लिए भी समय की यह बेड़ी पैर फटकार कर दूर न फेंक दी जा सके, तो गुलामी का यह बोझ स्वच्छन्दता से ढोते रहने में मजा ही क्या? परन्तु घर के सब लोग बहुत परेशान थे। हमें जान पड़

रहा था कि हमारे भोज की सारी शोभा नष्ट कर देने पर ही बराती तुले हुए हैं। वे नहीं चाहते कि यथा समय उनका यथोचित सत्कार करके, उनके सामने ही हम किसी तरह भी अपना गौरव बढ़ा लें।

बड़ी देर बाद बुलाने वाले सूखा मुहँ लिये अकेले लौट आये। मालूम हुआ, मामला बेढब है। वकील-मुख्तारों से काम नहीं चल सकता; वहाँ हम सबको असालतन हाजिर होना चाहिए।

उस समय जनवासे में गिने-चुने ही बराती थे। आपस में सबका हुक्का चल रहा था। दादा ने हाथ जोड़कर कहा—भोजन के लिए चलने की कृपा हो।

बरात की युद्ध-समिति के सब सदस्यों की उपस्थिति पूरी करने के लिये, 'इन्हें बुलाओ, उन्हें बुलाओ' की धूम पड़ गई। जो उपस्थित थे, उनके रंग-ढंग से ऐसा जान पड़ा कि मामले का फैसला लिखा रक्खा है; सुनाने भर की देर है। हम लोग मुहँ लटकाये हुए चुपचाप अभियुक्त की भाँति एक ओर बैठ गये।

कुछ लोग आ पहुँचे। उनमें से एक ने कहा—लाला लालतासहाय नहीं आना चाहते; सिरे के रिश्तेदार हैं, उन्हें फिर से बुलवा लो।

तब तक लाला साहब स्वयं आ पहुँचे। खड़े खड़े ही उन्होंने कहा—किसलिए यह तलबी हुई है? लो हम आ गये; सुना दिया जाय हुकुम।

मैं समझता था, बरात में मुन्नी के ससुर ही हम सबसे बड़े हैं। अब मालूम हुआ कि मैं भूल पर था; उनके ऊपर भी कोई है। एक के ऊपर दूसरा, दूसरे के ऊपर तीसरा, यह क्रम लगातार बहुत दूर तक चला गया है। अब मुझे सन्तोष करना चाहिए कि वस्तुतः छोटा हममें कोई भी नहीं।

यह कैसी बात है कि जो हुक्म सुना सकता है, वही हुक्म सुना देने की प्रार्थना करे। ऐसे कलियुगी विपर्यय को आमने-सामने प्रत्यक्ष देखकर हमारे मालिक साहब घबरा उठे। उठकर उन्होंने लाला साहब को अपने स्थान पर बिठाया और स्वयं नीचे की ओर खिसक आये।

लाला साहब ने कहा—तो सुन लो, भोजन के लिए हम न जायँगे। हमें तो साफ बात पसन्द है। हम चाहें तो हमारी मरजी के खिलाफ एक कुत्ता भी नहीं जा सकता। फिर भी हम किसीको रोकते नहीं; जिसे जाना हो खुशी से चला जाय, हम न जायँगे।

कुसूर की बात पूछे जाने पर भड़क कर कहने लगे—

अब कसूर मनाने आ गये, घर पर राजा साहब बन जाते हैं ! पान-पत्ते और भले आदमियों की-सी दो बातें पूछना तो दरकिनार, खुद हमें अपने हाथों पैर धोते देख, हरीनाथ ने अपना मुहँ दूसरी ओर फेर लिया। अपने हाथों हमारे पैर पखार देते तो इनकी नाक कट जाती !

मेरे ऊपर यह जो अभियोग लगाया गया था, उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ भी स्मरण न था। लाला साहब कहते गये—ऐसे घमंडियों के यहाँ थूकने जाना भी पाप है। तुम्हें रुपये की गरमी है तो हमें भी काम नहीं। थानेदार साहब हों या तहसीलदार साहब, सबको हम खरी-खरी चुका देते हैं। गाँस-गुड़ी की बात हमें पसन्द नहीं। कोई नाराज होजाय,—बला से।

पास ही बैठे हुए एक सज्जन ने उनकी बात सकारते हुए कहा—हाँ, लाला साहब में यह बात तो है; किसीसे डरते बिलकुल नहीं। उस दिन गाँव में जब कलट्टर साहब आये, तब गाँव वाले एक कुएँ की मरम्मत करा देने की अर्जी दे रहे थे। बड़ा मनहूस हाकिम है, हमेशा हंटर लिये फिरता है। किसीकी हिम्मत न पड़ी कि उससे दो बातें तो करे। आखिर लाला साहब ने उसके पैर पकड़ कर उसका रास्ता रोक ही तो लिया और जब तक अपनी दरखास्त

मनवा न ली, तब तक उसे वहाँ से डिगने तक न दिया। ऐसा है इनका हठ !

लाला साहब के चेहरे पर मुसकान दिखाई दी। कहने लगे—उस दिन माते, मुखिया और पटवारी सबकी बोलती बन्द थी, अब सभी खुश हैं। खुश होने की बात ही है। पहले सबकी घरवालियों को कोस भर जाकर नदी से पानी लाना पड़ता था और अब घर में गंगाजी आ गईं। परन्तु उस दिन का साथी कोई न था। बिगड़ कर कहीं कलट्टर साहब पैर फटकार देते तो मुहँ हमारा टूटता, खुश होने के लिए सब हैं !

उस दिन की अपनी विजय-गाथा से लाला साहब प्रसन्न हो उठे। दादा ने भी मेरी ओर से उनके पैर पकड़ कर उचित अवसर पर ही क्षमा याचना की। अतएव उनके दयालु होने में बहुत झंझट न हुई। फिर भी भोजन के लिए जब कोई उठता न दिखाई दिया, तब मालूम हुआ, मामला तय होने में अभी बहुत कसर है।

सब बराती एक दूसरे का मुहँ ताकने लगे। जान पड़ा, मानों सबके सब दौरा जज हैं। उनका काम अभियुक्त के जीवन-मरण का निर्णय कर देने का है, सो वह पहले ही पूरा किया जा चुका। अब उस निर्णय को सुना कर कार्य

रूप देने की हत्या का काम किसी पेशेदार का है। उसीकी खोज होने लगी।

अन्त में लाला लालतासहाय ने हमारी सहायता की। क्षमा दे चुकने के बाद वे हम लोगों के प्रति बहुत कुछ उदार हो गये थे। उन्होंने कहा—यह चिच-पिच ठीक नहीं। हम तो साफ बात पसन्द करते हैं। बेचारों के काम में हर्ज हो रहा है। जो कहना है, खुल कर क्यों नहीं कह देते? हाँ, सुन्दर, तुम कहो।

सुन्दर ने उत्तर दिया—आप ही हम सबमें बड़े हैं। आपके सामने भला हम मुहँ खोल सकते हैं?

"तो सुनों लाला, आपके यहाँ कोई रामलाल है? रमला,—हाँ वही, नौकर। उसीके बारे में ऐतराज है।"

"क्या ऐतराज है?"

"ऐतराज कुछ नहीं, धर्म की बात है। कुछ भी हो हमें धर्म का पालन करना चाहिए। देखो, ईसाई और मुसलमान नित्य नियम से अपने अपने मन्दिर में जाकर भगवान् का नाम लेते हैं। इसीसे जवन होकर भी वे हमारे मालिक हैं। यह झूठ है कि उस दिन रामलाल ने डाकू भगा दिये। यह सब लाला जानकीराम (मेरे दादा) के भजन का प्रताप है। अगर डाकू घर के भीतर घुस जाते

तो वहीं के वहीं भसम हो जाते। रामलाल को हमने देखा है, एक मामूली छोकड़ा है। उसके पीछे हम अपना धर्म छोड़ दें, यह नहीं हो सकता।—घबराओ मत, हम अभी सब कहे देते हैं। वेद में लिखी बात के विरुद्ध हमें नहीं जाना चाहिए। वेद तो आर्या तक मानते हैं। जर्मन वाले भी वेद को ही लेकर चलते हैं। वह तो उनसे वेद-पाठ में कुछ गलती हो गई, इसीसे वे लड़ाई हार गये; नहीं तो क्या कोई उनका सामना कर सकता था? तो हाँ रामलाल के लिए हम वेद की बात नहीं उलट सकते। हम मानते हैं, रामलाल की नीयत बुरी न थी। आदमी की हत्या उससे अनजान में ही हो गई। फिर भी—

एक दूसरे सज्जन बीच में ही बोल उठे—ताजीरात की १४४ वीं दफा में लिखा है कि हर मामले में मुलजिम की नीयत देख कर फैसला करना चाहिए।

लालतासहाय ने क्रुद्ध होकर कहा—ताजीरात की पोथी हमारे यहाँ भी रक्खी है। उसकी बात तो हम कर ही रहे थे। नहीं मानते तो हम चुप हुए जाते हैं, तुम बोलो।

उन सज्जन के चुप हो जाने और फिर से अनुरोध किये जाने पर लालतासहाय कहने लगे—तो सुनो, रामलाल से जो आदमी मर गया, उसके गले में जनेऊ था।

अब ब्रह्म-हत्या का पाप उसे लगा या नहीं ? उसे गंगाजी जाकर प्रायश्चित करना चाहिए। इसलिए घर जाकर सबसे पहले उसे हटा दो, तभी हम भोजन में शामिल हो सकेंगे। बस, इतनी ही बात है।

हमारी ओर से बरात वालों को वचन देना ही पड़ा कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। इस बात के लिए अड़ पकड़ने का कोई कारण भी न था। रामलाल न हमारी जाति का, न कोई सगा-सम्बन्धी। एक मामूली नौकर को लेकर इतनी खींच-तान करने की क्या आवश्यकता थी ? बरात वालों की इस बेवकूफी को लेकर गाँव वालों को अपना जी ठंढा करने का एक अच्छा मौका मिल गया। सिरे के सम्बन्धी हैं, इसीलिए झुकना पड़ता है; नहीं तो हैं सबके सब पूरे गँवार !

क्रोध से मेरा माथा फटने लगा। जी में आया, रामलाल को बुलाकर कह दूँ—बागी होकर बन्दूक उठा ले; फिर देखें, तुझे यहाँ से कौन हटाता है।

परन्तु रामलाल शान्त था। उसने मेरे पास आकर कहा—भैया, मेरे लिए अपना जी क्यों खराब करते हो ? मैं तो चाकर हूँ, कहीं दूसरी जगह काम पर भेज देते तो यह खटपट न होती। श्याम काका कहते हैं, 'यहाँ बने रहो, बस बरातियों को मालूम न हो कि तुम हटाये नहीं गये। खुले में

होने से ही किसी बात में दोष माना जाता है; वैसे परदे के भीतर तो न जानें क्या क्या होता है।' परन्तु मेरे लिए यह जालसाजी करने की क्या जरूरत। मैं जा रहा हूँ। हाँ, बिन्नी को यहीं बुला दो; उसके पैर छूता जाऊँ। अब घर के भीतर मेरा जाना ठीक नहीं।

उसकी सहनशीलता देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैंने कहा—हम नालायकों के बीच में तू न आता तो तुझे यह अपमान न सहना पड़ता।

फीकी हँसी हँसकर संकोच के साथ उसने कहा—आप लोग मालिक हैं; आपके यहाँ किसी बात में हमारा क्या अपमान?

विवाह के वस्त्रालंकारों से झुकी हुई मुन्नी आकर खड़ी हो गई। रामलाल के इस अपमान की वेदना उसके मुहँ पर स्पष्ट अंकित थी। वह रो नहीं रही थी, यही बहुत था। दो रुपये अपनी जेब से निकाल कर रामलाल आगे बढ़ा। मुन्नी के पैर छूकर उसने कहा—बिन्नी, छुटपन से मैंने तुझे गोद में खिलाया है। सोचा था, तुझे अपने घर के लिए बिदा करते समय तेरे पैर पखारने का पुण्य भी मुझे मिलेगा। परन्तु मेरा सुकृत इतना नहीं। कई महीनों में बचा बचाकर मैंने ये रुपये जोड़े हैं। ले ले बिन्नी; इनकार न कर।

मुन्नी जोर से रो पड़ी। मुझसे बोली—रामलाल भैया को रोक लो। इनका यह अपमान मुझसे देखा नहीं जाता।

मैंने कहा—जाने दे बहिन, इसे जाने दे। इस जगह बने रहने में ही इसका अपमान है। रुपये ले ले। इन रुपयों से बड़ी भेंट हममें से कोई तुझे नहीं दे सकता।

फिर से मुन्नी के पैर छूकर, ऊपर की ओर हाथ करके मन-ही-मन उसने कुछ प्रार्थना-सी की और झट-से मुहँ फेर कर वह वहाँ से निकल गया।

११

मुन्नी अपने घर गई। सुधारकों का कहना है, लड़की को अपने घर जाते समय रोना न चाहिए। इसमें अशुभ है। परन्तु जब मेरे उस आदेश के विरुद्ध मेरी छाती में अपना मुँह छिपा कर वह धीरे धीरे रोने लगी, तब मैं भी भूल गया कि मैं यह कैसी दुर्बलता प्रकट कर रहा हूँ। वह बोली--रामलाल भैया का ख्याल रखना, मेरा इतना ही कहना है।

मेरा मन विश्व-व्यापी क्रन्दन कर उठा। इच्छा हुई, जोर से चिल्ला कर रो पड़ूँ। यदि यह अशुभ है तो संसार में शुभ का अस्तित्व कहीं है ही नहीं।

मुन्नी के जाते ही घर भर में सन्नाटा छा गया। जूठी पत्तलों पर केवल कौओं की काँव काँव ही सुनाई देने लगी। अब जान पड़ा, इस सूनेपन के सामने बरातियों का

वह कुत्सित संसर्ग भी कितना मधुर और भरा-पूरा था!

बीच बीच में उस सूनेपन में अनुभव होने लगा कि बहुत दूर न जाने कहाँ से मुन्नी के रोने की ध्वनि आ रही है। रोते रोते उसका गला बैठ गया है और वायु भी मानों उस विराट वेदना को वहन करने में असमर्थ है। इसीसे वह उसका बहुत सूक्ष्म ही हम तक पहुँचा रही हो। परन्तु यह सूक्ष्म जितना सूक्ष्म है, उतना ही वेधक भी है।

उसका यह क्रन्दन रोका किस तरह जाय? चौदह बरस तक लगातार वह इस घर में रही है। इसके अणु अणु और परमाणु परमाणु में उसने अपनी स्मृति को हिला मिलाकर एक कर दिया है। विधाता ने अपने हृदय की समस्त कोमलता के साथ पहले पहल उसे इसीकी गोद में उतारा। और आज वह इसकी कोई नहीं! इस घर पर अब उसका इतना ही अधिकार है कि दस-पाँच बरस में इन पाहुनियों की भाँति कभी कभी दो-चार दिन के लिए रह जाय। इस अधिकार के होने से न होना अच्छा।

दिन भर मेरी कल्पना लगातार मुन्नी के साथ ही घूमती फिरती रही। अब वह नदी पर पहुँच गई होगी। अब इसके आगे किसी अमराई के पास उसकी पालकी

होगी। कुएँ का सुभीता देखकर कहारों ने पालकी उतार कर नीचे रख दी होगी और नाइन या किसी छोटे लड़के के द्वारा मुन्नी से पानी पीने, भोजन करने आदि के लिए पुँछवाया जा रहा होगा। आज सबके सब उसके प्रति अत्यन्त मृदु व्यवहार कर रहे होंगे। बाजार से किसी गुलाम को खरीद कर घर ले जाते समय उसके मालिक में भी पहले पहल इसी तरह की कोमलता दिखाई देती होगी।

इस प्रकार जब मैं स्वयं ही व्याकुल हूँ तो माँ और दादा को किस तरह समझाऊ? सम्भव है, कोई बात कहकर मैं उनको पीड़ा और बढ़ा दूँ। आज कोई कुछ खाना-पीना नहीं चाहता तो न खाने दो। एक दिन में ही कोई भूखों नहीं मर जाता।

परन्तु इस रामलाल को तो देखो। कहता है, मालिक के घर में हमारा क्या अपमान? किन्तु उसी दिन से गाँव छोड़ कर न जानें कहाँ चला गया। बरात बिदा होजाने के बाद तुरन्त ही क्या उसे यहाँ न आना चाहिए था? इस समय आकर वह माँ के पास घड़ी भर के लिए बैठ जाता तो उसकी बात मारी जाती!

दूसरे तीसरे दिन वह दिखाई दिया। उस पर मुझे गुस्सा था। मैंने सोच रक्खा था, अब उसे बुलाऊँगा नहीं।

देख तो लूँ अपनी लगी हुई रोटी छोड़ कर कब तक अपने आप दौड़ा नहीं आता। उस बात को याद करके अब मैं सोचता हूँ, उसे रोटी देने का कुछ कुछ अभिमान निश्चय ही मेरे मन में था। यह दूसरी बात है कि मैं उसे कभी मुहँ पर ला न सका होऊँ। कदाचित् यह इसीलिए कि रसना को भले-बुरे के स्वाद का ज्ञान है। स्थूल शरीर की भाँति कहीं हमारे मन को भी एक ऐसी ही रसना दे दी गई होती तो अनायास हम कितने ही दुर्विचारों के अखाद्य से बच जाते।

परन्तु उसे देख कर मेरे मन में दूसरा ही भाव उठा। यह कैसा आदमी है, जिसे अपने मान-अपमान का कुछ विचार ही नहीं। बुलाये जाने के लिए दो चार दिन तो प्रतीक्षा करता। मानों हम इसकी जगह कोई दूसरा आदमी तुरन्त ही भरती कर लेते। कम से कम मेरे विषय में तो इसे ऐसी धारणा न करनी चाहिए थी। क्यों न करनी चाहिए थी, इसका युक्ति-संगत कारण मेरे पास न था।

मुझसे 'राम राम' करके, विना कुछ कहे-सुने वह माँ के पास चला गया। किसी एक डाक्टर की नकल वह अकसर किया करता था। उसीके ढंग से खड़ा होकर बोला—ओ, तुमको एक सौ बीस का बुखार है! कड़ी दवा देना पड़ेगा।

एक क्षण रुककर उसने दवा सोचने का-सा ढंग दिखाया और कहने लगा—जब तक सो न जाओ, तब तक दो दो घन्टे बाद सवा सेर मोहनभोग, डेढ़ सेर किसमिस और बादाम की ठंढाई—

माँ के मुख पर हँसी की रेखा देख कर वह भी हँस पड़ा। अब अपने सहज स्वर में कहने लगा—क्यों माँ, दवा की एक खुराक क्या कुछ बड़ी हो गई ? परन्तु मुझे तो एक सौ तीस का बुखार है; मेरे लिए इससे कम किसी तरह ठीक न होगी।

"क्यों नहीं, तू ऐसा ही खाने वाला तो है।"

"विश्वास नहीं है तो इसी समय खिला कर देख लो"—कहकर मानों पत्तल की प्रतीक्षा में उसी जगह बैठ गया। मुन्नी की बिदा के बाद आज पहली ही बार मैंने माँ के मुहँ पर हँसी देखी।

मुझसे छिपा न था कि माँ की और स्वयं रामलाल की भी यह हँसी बनावटी है। किन्तु कभी कभी इस बनावट की भी आवश्कता पड़ती है। पानी में से निकाले गये मनुष्य कृत्रिम श्वास-संचार के उपाय से ही फिर से जीवित होते देखे गये हैं।

सब काम पहले की ही भाँति चलने लगा।

१२

इधर रामलाल में कुछ दिन से नया परिवर्त्तन दिखाई दिया। वह एकाएक विशेष रूप से प्रसन्न रहने लगा। हमसे बचकर दूसरे नौकरों के साथ गुपचुप न जानें क्या गप लड़ाया करता। काम-काज में भी उसका मन न लगता। काम पर सबेरे देर करके आता और रात को भी जल्दी ही घर चला जाता।

एक दिन उसके बाप ने आकर दादा से कहा—भैया, रमला का विवाह है; पैसे की मदद करनी पड़ेगी। सौ रुपये के बिना काम न चलेगा।

दादा ने सहायता करना स्वीकार करके पूछा—लड़की तो अच्छी है?

उसने उत्तर दिया—बहुत अच्छी, लच्छमी जैसी; सयानी है। तुम्हारी दया से अब रोटी-पानी का सुभीता हो

जायगा ! रमला की माँ के मर जाने के बाद से बड़ी तक-लीफ थी। इसी दिन के सुख को बात सोच कर मैंने फिर से अपना घर नहीं बसाया था।

कह कर वृद्ध ने एक साँस ली।

एकान्त में पाकर मैंने रामलाल से कहा—क्यों रे रामलाल, यह बदमाशी ?

वह समझ गया कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। हँसकर बोला—क्यों मैंने क्या किया भैया ?

"किया क्यों नहीं; सगाई, बातचीत सब पक्की कर ली—और कानों कान मुझे खबर भी न हुई।"

"ऐसी बहुत बड़ी बात तो थी जो तुमसे कहता-फिरता। हम लोगों की सगाई भी क्या, रुपय आठ आने का खर्च है। कोई धूम-धाम का काम होता तो तुम्हें भी मालूम होता। अब विवाह के समय थैली की थैली खोलनी पड़ेगी।"

"दुलहिन तो देख-परखली ? ऐसा न हो कि दुलहिन के बदले कोयले का एक ढेर घर में आ जाय।"

"नहीं भैया, बहुत अच्छी—"कहते कहते संकुचित होकर वह बीच में ही रुक गया।

इस संकोच के बीच भी विवाह की चर्चा में उसे

आनन्द आ रहा था। अधिक देर तक बातचीत करने के लोभ से वह मेरे कमरे का फैला-फूटा सामान ठीक से लगाने लगा। मैंने पूछा—तो इस बीच में तू उसे देख भी आया ?

थोड़ा इधर-उधर करके उसने वह बात भी सुना दी। बोला—उस दिन मैंने सोचा, विवाह के पहले एक बार उसे देख आना चाहिए। सब पढ़े-लिखे भी तो ऐसी ही पसन्द करते हैं। भोजपुरा यहाँ से दो कोस है। दो कोस कहाँ, कम ही होगा। उसके खेत का डेरा तो अपने गाँव के मेंड़ पर ही है। बीसियों बार मैं उसके पास से निकल चुका था।

"परन्तु इस बार जिस तरह चोरी चोरी गया, वैसा कभी न गया होगा।"

"वाह भैया, इसमें चोरी की क्या बात; गया था, अपनी खुशी। किसी का कुछ चुरा तो नहीं लाया ?"

"परन्तु उससे बात करते कोई देख लेता तो तुझे शरम न लगती ?"

"सब बातें मैंने पहले ही सोच रक्खी थीं। कह देता, दादा ने आसामियों के पास तगादे के लिए भेजा था, वहीं जा रहा था। ऐसा ही और कुछ, जो उस समय समझ में आता।"

"तो इन बातों में तू अभी से पक्का हो गया। फिर मिला मौका ?"

"मिलता क्यों नहीं, अच्छी सायत में घर से चला था। किसी ढोर को खेत के बाहर खदेड़ देने के लिए वह उसी समय घर से निकली। आस-पास कोई न था। चारों ओर धुँधली-सी चाँदनी छिटकी हुई थी। मैंने पूछा, भोजपुरा यहाँ से कितनी दूर है ? उसने ध्यान से मेरी ओर देखा और दबे स्वर में उत्तर दिया—'मुझे नहीं मालूम; पूछो उधर किसीसे, जाओ !' कह कर वह जाने लगी। मैंने समझ लिया कि यह जान गई है कि मैं कौन हूँ; तभी तो हुकुम लगा कर चले जाने के लिए मुझसे इस तरह कह रही है। मैंने कहा—इस तरह जाती कहाँ हो रानी ? गाँव का नाम नहीं मालूम तो पानी ही पिला जाओ; प्यास लगी है। 'यहाँ प्याऊ नहीं रक्खी है, जाओ यहाँ से'—कह कर अपनी हँसी चाँपती हुई तेजी से भाग गई।

मैंने हँस कर कहा—तो अभी से हुकुम चलाने वाली रानी तेरे घर आ रही है ! अब तो उसीकी चाकरी करेगा ? हमारे काम के लिए तुझे अवकाश कहाँ ?

उसने कहा—भैया, यह कैसी बात कर रहे हो ? अभी तक मैं अकेला इस घर की चाकरी करता था।

अब एक की जगह दो होकर सब काम करूँगा।

उसके दृढ़ता-व्यंजक उत्तर से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

मैंने रामलाल से कह दिया था,—देख, विवाह में बहुत खर्च न करना। परन्तु मेरी वह आज्ञा ऐसी थी, जिसके अनुसार स्वयं हमीं न चल सकते थे। इसलिए वह अपने आप उस दीवार की भाँति नीचे खिसक पड़ी, जिसकी नींव ने ठोकने-पीटने वाले कारीगर की एक हल्की चोट भी सहन न की हो। रामलाल के बाप ने हमारे यहाँ से तो ऋण लिया ही, और जिस जिससे जो कुछ मिल सकता था, लेने में उसने कुछ उठा न रक्खा। खर्च करने में कोई कंजूसी नहीं की, यह न कह कर मैं कहना चाहता हूँ कि ऋण लेने में उसने कोई कंजूसी नहीं की।

मैंने मन में कहा, अच्छा हो इस ऋण के लिए इसे भरपूर दण्ड मिले। चारों ओर से महाजन टूट पड़ें और घर-वार, कपड़े-लत्ते सब कुछ छीन लें, तभी ऐसों की आँखें खुलें तो खुलें।

इस सम्बन्ध में दूसरे लोगों का मत कुछ भिन्न था। एक सज्जन ने बातचीत के सिलसिले में कहा—ये नीच-जाति हैं। गाँठ में दो पैसे हुए और आँखें आसमान पर चढ़ गईं। फिर तो समझने लगते हैं, जो हम हैं सो कोई भी

नहीं। इनकी आँखें न खुलने में ही संसार का मंगल है। सबके भले के लिए ही भगवान् ने इन्हें ऐसी बुद्धि दी है। नहीं तो थोड़े ही दिनों में इनकी बड़ी हवेलियों के मारे हम सबको खड़े होने के लिए कहीं ठिकाना भी न रहता।

उनसे मैंने पूछा—आँखें आसमान पर चढ़ जाने में नीच और ऊँच जाति का क्या प्रश्न? अपने को ऊँचा कहने वाले हम लोग भी विवाह में ऐसा ही अन्धाधुन्ध खर्च करते हैं। एक तरह से आपके वही लोग हमसे अच्छे हैं। क्योंकि गाँठ में पैसा होने पर ही उन्हें उसका नशा चढ़ता है। परन्तु हमारे पास कौड़ी न हो तब भी हम आदमी को आदमी नहीं समझना चाहते।

उन्होंने कहा—वाह, आप भी अच्छी बातें करते हैं! हम लोग समर्थ हैं, हमारी और उनकी क्या बराबरी? गुँसाई जी ने भी कहा है कि समर्थ का कोई दोष नहीं। परन्तु आप लोग तो जवन लोगों की बनाई हुई अँगरेजी किताबों को मानते हैं। इसलिए मैं दूसरे उदाहरण के साथ समझा सकता हूँ कि ये नीच हैं।

सुनने वाले सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। वे सज्जन कहने लगे—रमला की बिरादरी में विधवाएँ फिर से ब्याह दी जाती हैं। हम लोग ऐसा कभी नहीं कर सकते।

कोई बुरी स्त्री अपने मुह में कालिख लगा कर घर से भले ही निकल जाय, कुएँ में गिर कर आत्महत्या करले; कुछ भी हो, हम अपने धर्म की मर्यादा नहीं तोड़ते।

मैंने खिन्न होकर कहा—अच्छी है आपके धर्म को मर्यादा, जिसका राक्षसो पेट इतनी अबलाओं की बलि पाकर भी नहीं भरा!

भेद-भरी दृष्टि से मेरी ओर देख कर, उन्होंने मानों विजय के उल्लास से कहा—मैं जानता था कि विधवाओं की बात आते ही आप चिढ़ जायँगे। नहीं साहब, विधवा-विवाह बहुत अच्छा है! आज से कुँवारियों का विवाह एकदम बन्द कर देना चाहिए। कुछ झंझट भी न करना पड़े और गौने की दुलहिन के साथ खेलता-कूदता आठ बरस का लड़का घर आ जाय, इससे भलो बात और क्या हो सकतो है? नेकी और पूछ पूछ!

सब लोगों के अट्टहास के साथ यह प्रसंग यहीं समाप्त हो गया।

विवाह के बाद साफ कपड़े पहने रामलाल काम पर आया। मैंने कहा—क्यों रे रामलाल, तेरी बरात चार दिन की लौट आई और काम पर आने का अवकाश तुझे आज मिला?

उसने कहा—भैया, बाहर के कुछ पाहुने थे, कल ही सबको बिदा कर पाया। और भी कुछ काम थे।

मैंने पूछा—एक पाहुनी तो अब भी है, उसे छोड़कर कैसे चला आया?

वह सिर झुकाकर हँसने लगा—फिर कुछ संकोच के साथ बोला—उस पाहुनी को झाड़ने बुहारने, पानी भर लाने, कन्डा थापने और ऐसे ही दूसरे कामों के लिए रख छोड़ा है। उसके लिए चिन्ता नहीं।

मुझे अनुभव हुआ कि दुलहिन की चर्चा उठते ही यह पुलकित हो उठता है। सम्भव है, आज भी यह यहाँ न आता। पास-पड़ोस के समवयस्कों ने आपस में आँखें चलाकर कहा होगा—देखा इस रमला का हाल; आते ही घरवाली की गुलामी में पड़ गया! इस अपवाद से बचने के लिए काम पर आने के सिवा दूसरा उपाय ही क्या था।

उस दिन किसी नववधू को अपने घर के भीतर जाते देखा। उसके साथ जो लड़की थी, उसके कारण मैं समझ गया कि यह रामलाल की दुलहिन है।

रात को ब्यालू करते करते मैंने पूछा—माँ, क्या आज रामलाल की दुलहिन को बुलाया था?

"हाँ"—कह कर वे चुप हो गईं। मैंने कहा—माँ,

मुझे यह रीति बहुत अच्छी जान पड़ती है। जो लड़की अपने माँ-बाप को छोड़कर सीधी गाय की भाँति एक घर से दूसरे घर चली जाती है, इस तरह निमन्त्रण दे कर, खिला-पिलाकर सबको उसका मन बहलाना ही चाहिए। बहू अच्छी तो है?

"अच्छी है"—माँ ने संक्षिप्त उत्तर दिया। मैं हँस पड़ा। बोला—माँ, तुम तो इस तरह कह रही हो, मानों तुम्हारे ऊपर बोझ रख कर तुमसे मैं यह बात कहलवा रहा होऊँ। अच्छी नहीं है तो कैसी है,—कानी, अन्धी, लूली, लँगड़ी; काली-कलूटी या और कुछ?

मेरे साथ माँ भी हँसने लगीं। बोलीं—नहीं, मैं कह तो रही हूँ अच्छी है। छवि भी बहुत सुन्दर है।

"परन्तु तुम्हें कोई बात खटकी अवश्य है। कहो माँ, मैं कैसा समझा?"

"ठीक समझे भैया। अभी लड़की है, बातचीत की समझ नहीं। कहती थी, मेरे भैया लिवाने आये थे, पहुँचाते नहीं हैं। अब सोमवार को फिर आयँगे। अब की न पहुँचाया तो मैं भाग कर चली जाऊँगी। ऐसी ही कुछ बातें, जो बहू को मुहँ पर न लानी चाहिए।"

मैं चुपचाप सुनता रहा।

१३

विवाह के अनन्तर मुन्नी ससुराल गई तो उसे लगातार दो तीन महीने वहाँ रहना पड़ा। चिट्ठी-पत्री और आदमी भेजे जाने पर भी इससे पहले वह न आ सकी। उन लोगों के किसी सम्बन्धी के यहाँ विवाह था, किसीके यहाँ गौना और किसीके यहाँ मुण्डन। इन सब बातों को असत्य प्रमाणित कर सकने का कोई साधन हमारे पास न था। हम लोग केवल इतना कह सकते थे कि माँ की तबियत अच्छी नहीं है। माँ की तबियत अच्छी नहीं है तो वैद्य की चिकित्सा करानी चाहिए। लड़की क्या करेगी?—अपनी बात का इतना सीधा उत्तर भी हम लोग न जानते थे!

मुन्नी आई। उसे देखकर एकाएक मुझे रोना आया। हाय! यह तो कुछ दूसरी ही हो गई। इतने थोड़े समय के भीतर ही मानों इसे अनुभव हो गया है कि यह घर किसी

दूसरे का है। हम सबने भी उसे सुख-सुविधा पहुँचाने का ऐसा ही प्रयत्न किया, मानों वह अतिथि हो। बहिन के प्रति आतिथ्य का यह भाव मुझे बहुत असह्य जान पड़ा। अपने जन्म के घर में ही उसकी गति उस पक्षी की भाँति संकुचित और कुंठित हो उठी, जिसे उसके स्वामी ने बहुत समय तक पिंजड़े में रखकर कुछ समय के लिए बाहर निकाला हो, परन्तु फिर भी जो अपने जड़ीभूत पंखों का यथार्थ उपयोग करने में असमर्थ है।

यह सब होने पर भी हम सबको उसके आने से बहुत सुख हुआ।

संसार में दूसरे स्वादिष्ट भोजनों की भाँति सुख अपना अजीर्ण कभी नहीं होने देता। मुन्नी अधिक दिन न रह सकी और उसे फिर ससुराल जाना पड़ा। अब की बार माँ ने चारपाई पकड़ी!

रामलाल का जीवन भी सुखी न दिखाई दिया। विवाह उसके लिए कठिन रोगी को दी गई उस औषधि के जैसा प्रमाणित हुआ, जिसके सेवन से कुछ देर तक तो आशातीत लाभ दिखाई दे और थोड़ी देर बाद ही परिणाम अत्यन्त भयंकर हो उठे।

विवाह के बाद रामलाल अपने घर अधिक से अधिक

रहना चाहता था। परन्तु कुछ दिनों में ही वह वहाँ से भाग कर बचने का प्रयत्न करने लगा। मेरे यहाँ आकर कठिन परिश्रम के काम में जुट जाता। मानों भरपूर थकान की भेंट के बिना रात को निश्चिन्त निद्रा भी उसको स्त्री के समान ही उससे दूर चली जायगी।

मैंने इधर-उधर उसकी स्त्री के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सुनीं। ससुराल में उसके लिए विशेष आकर्षण न था। एक जगह बँध कर काम न करने वाले मजदूर की भाँति, बुलाये जाने पर वह कभी कभी दो एक दिन के लिए वहाँ आ जाती, कभी आने से साफ इनकार कर देती; और कभी आकर भी स्वामी की उपेक्षा करके जब जी चाहता तभी सूचना दिये बिना तुरन्त मायके के लिए चल देती। लोग कहते थे कि केवल माँ-बाप के प्रेम के कारण ही वह ऐसा नहीं करती, इसमें और भी कुछ रहस्य है। उनका यह अनुमान मुझे भी ठीक जान पड़ता था।

एक दिन रामलाल ने कहीं जाने के लिए तीन-चार दिन की छुट्टी चाही। मैंने समझ लिया कि काम तो कुछ विशेष है नहीं, केवल कहीं बाहर जाकर वह मन बहला आना चाहता है।

गन्तव्य स्थान का नाम सुन कर मैंने कहा, मुन्नी की ससुराल भी बीच में पड़ेगी। उससे मिलेगा या नहीं, इस

सम्बन्ध में कुछ न कह कर, मेरी बात पर 'हाँ' करता हुआ वह चला गया।

जाते समय मुन्नी से मिलने का विचार उसके मन में न था। परन्तु लौटते समय वह रह न सका। अकस्मात् उसके यहाँ जा पहुँचा।

घर की पौर में आकर मुन्नी उससे मिली। मिल कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। घर के समाचार सुना चुकने के बाद उसने कहा—बिन्नी, तू तो बहुत दुबली हो गई।

सूखी हँसी हँसकर उसने वह बात उड़ा दी। बोली—रामलाल भैया, कुछ खा लो।

"घन्टे भर पहले ही तो दूसरे गाँव में एक कुटुम्बी के यहाँ खा-पीकर चला हूँ। अब वे पहले के दिन कहाँ, जब भर-पेट खाये-पिये होने पर भी होड़ बद कर सेर सवा सेर खा जाता था। हाँ, पानी पियूँगा।"

मुन्नी एक बड़ा लोटा ले आई। रामलाल ने इस घर को भाँति ही उसे उसके हाथ से ले लिया और उसे ऊपर करके दूसरे हाथ की अँजुली में धार बाँध कर पानी पीने लगा।

संयोग की बात; इसी समय किसी काम से मुन्नी के जेठ उधर से निकले। मुन्नी घूँघट सरका कर एक ओर हट गई। रामलाल के हाथ में लोटा देखकर वे एकदम

आग हो गये। बोले—लखन की ससुराल के इस आदमी के हाथ में यह लोटा किसने दिया? इसीको तो ब्याह में हमने घर से निकलवा दिया था। कमीन हत्यारों के साथ यह किरिस्तानी आपसदारी हमारे यहाँ नहीं चल सकती। लोटा आग में डाल कर शुद्ध किये बिना काम में न लाया जाय।

रामलाल जैसे नीच के हाथ को तुरन्त कुचल देने के लिए बड़ी जाति का वह लोटा छोटी-मोटी पहाड़ी का भी रूप धारण न कर सका, उसके ऐसे अपराध का उचित दण्ड उसे उसी समय चूर चूर कर डालना ठीक होता। परन्तु जान पड़ता है, दण्ड का यह आघात लोटे की अपेक्षा लोटे के स्वामी पर ही अधिक पड़ता; इसी कारण तपन नामक नरक के इस सामान्य दण्ड से ही उस समय उस बेचारे को छुट्टी मिल गई।

मुन्नी के जेठ क्रोध के साथ तेजी में चले गये, रामलाल ने निस्पन्द भाव से लोटा एक ओर रख दिया और मुन्नी सिसक सिसक कर रोने लगी। रामलाल ने सँभल कर कहा—बिन्नी, रो मत; भूल मेरी है। तेरे हाथ से खुद मुझे लोटा न लेना चाहिए था।

मुन्नी ने रोते रोते कहा—रामलाल भैया, तुम क्यों

यहाँ आये; तुमने समझ क्यों न लिया, हमारी बिन्नी मर गई।

रामलाल की आँखों में भी आँसू आ गये। बोला—इसमें मेरा क्या अपमान? बाहर मेहमानी में ही अच्छे अच्छे बिंजनों की थाली में दोष निकाले जाते हैं, परन्तु यह तो घर है। इसकी थाली में रूखी-सूखी, बासी-तिबासी कोई चीज आ जाय तो इसका ख्याल कौन करता है?

परन्तु मुन्नी को सन्तोष न हुआ। वह बराबर रोती रही। रामलाल को डर लगा कि इस रोने के कारण कहीं उसे फिर और अधिक न रोना पड़े। आते समय उसने कहा—बिन्नी, तू नाहक रोती है। यह कैसे हो सकता था कि इतने पास आकर भी मैं तुझे देखने न आता। मैं इन बातों का ख्याल भी न करूँगा। जैसी बातें तू नित्य सुन लेती है, तेरा भाई होकर क्या मैं उन्हें एक बार भी नहीं सुन सकता? तेरे ऊपर महावीर स्वामी की दया बनी रहे!

घर आकर रामलाल ने मुझे सब हाल सुनाया। सुनते समय मैंने देखा, वास्तव में उस अपमान ने उसे छुआ तक नहीं है। किसी तरह अपने दुःख और क्रोध को रोक कर मैंने कहा—देख, माँ की तबियत अच्छी नहीं है, उनसे यह कुछ न कहना।

उसने कहा—भैया, मैंने यह बात, पहले ही सोच ली थी। दादा से भी न कहूँगा। तुमसे कहने में कुछ हर्ज नहीं, इसीसे कह दिया।

मेरे मुहँ से एक गहरी साँस निकल पड़ी।

१४

दादा ने भौजी की मृत्यु के बाद फिर से विवाह नहीं किया था। उनका अधिकांश समय हरिचिन्तन में बीतता था, शेष गृह-कार्य में। मैं भी किसी तरह अब तक अपना विवाह टालता आया था; परन्तु टालटूल भी कहाँ तक की जा सकती है। इस बार उसके सम्मन की तामील मुझे करनी ही पड़ी। पेशी का दिन अभी कुछ दूर था।

इसी बीच में रुग्ण होकर माँ चारपाई पर जा पड़ीं। मेरा मन पीड़ित हो उठा। माँ की अवस्था ऐसी है और उनकी सेवा-सँभाल करने के लिए घर की कोई स्त्री नहीं। मुन्नी को बुलवाया था, परन्तु वह न आ सकी। उन लोगों के घर में अनेक असुविधाएँ थीं। मायकेवाले किसी न किसी बीमारी का बहाना करते ही हैं, उनको इस बात का व्यक्तिगत रूप से अनुभव था। फिर भी डेढ़ दो महीने बाद उसे बुलवा

लेने की स्वीकृति उन्होंने स्वयं ही दे दी। अच्छी बात है, डेढ़ दो महीने बाद ही सही। जब आ सके तभी आवे, उसका घर है।

माँ को ज्वर नित्य हो आता था, फिर भी प्रति दिन नियमानुसार स्नान होना चाहिए। एक दिन अड़ कर मैंने कहा—कुछ हो माँ, आज मैं तुम्हें नहाने न दूँगा। जप-तप, पूजा पाठ की मुख्तारी का ठेका ब्राह्मणों को है ही; उन्हींमें से किसी सवासेरिये को पकड़ कर तुम्हारे बदले सौ घड़े पानी से नहला दिया जायगा। तुम चिन्ता न करो।

माँ ने हँस कर कहा— अच्छी बात है, मेरे बदले भोजन भी उन्हींको करा देना।

मैंने अपने हठ की हिलती हुई दीवार को हाथ का सहारा देकर थाम रखने का प्रयत्न किया। बिगड़ कर बोला—ऐसा तुम खाती ही क्या हो! अच्छा न खाओ कुछ, मैं तुम्हें नहाने न दूँगा।

माँ नहाने के लिए न उठीं, चुपचाप बैठीं रहीं। यह भी काम बुरा न था। दोपहर को बहुत पहले खा-पी लेने के लिए भी इन दिनों मैं उन पर जोर डालता रहता था। परन्तु मेरी और उनकी घड़ी में दो तीन घन्टे का अन्तर साधारण बात थी। इसलिए जिस दिन दोपहर का भोजन एक बजे

कर लेतीं, उस दिन समझतीं आज बहुत जल्दी हुई । मेरा ध्यान आकर्षित करके कहतीं,—देख, आज तो ठीक समय पर खा-पी लिया ? अब मैं ही नहाने के लिए उन्हें उठने नहीं देता तो आज निश्चय दो बजेंगे । इसलिए मुझे हार माननी ही पड़ी । फिर भी हारते हारते, सन्धि करने के पहले एक अस्त्र और देने का लोभ मैं न छोड़ सका। बोला—गो-ब्राह्मण के ऊपर भी तुम्हें श्रद्धा नहीं है तो मैं क्या करूँ ? उठो नहा लो; देर न करो।

उठ कर उन्होंने कहा—अच्छा नाखुश न हो; मैं अधिक न नहाऊँगी।

मैं जानता था, उनका संक्षिप्त स्नान भी मेरे जेठ-वैशाख के स्नान से कम नहीं होता । कहा—अधिक क्यों नहीं, जितना नहाना हो नहा लो; कहो तो नदी के लिए गाड़ी सजवा दूँ।

दूसरे दिन निश्चय नदी-स्नान का कोई पर्व था। माँ के लिए महीने के तीस दिन में इकतीस पर्व पड़ते हैं। उस पर्व की महिमा का वर्णन करके वे सचमुच ही यह पुण्य लूटने के लिए तैयार हो उठीं ! बोलीं—आज नहीं, यदि कल नदी पर पर्व लेने के लिए भिजवा सके तो मैं तेरा बड़ा जस मानूंगी।

उनका यह रोग मेरे लिए किसी तरह भी साध्य नहीं, यह सोचता हुआ मैं बाहर चला आया। कुछ लोग ऐसे हैं कि जो किसी निश्चित नशे के बिना दो डग भी नहीं चल सकते। माँ के लिए यह स्नान भी एक तरह का नशा है। इसके बिना उनका भजन-पूजन और खान-पान कुछ नहीं हो सकता। नशा चाहे जितना निर्दोष हो, उसमें कुछ न कुछ हानि रहती ही है। इस हानि से माँ को बचा लेने की शक्ति मुझमें नहीं, क्योंकि इसके पीछे एक नशा है।

१५

रामलाल समाचार लाया कि कुछ डाकू पकड़ लिये गये हैं। उनके मुकद्दमे में गवाही देने के लिए चपरासी सम्मन लाया है। अपना सम्मन उसके हाथ में था।

मेरे नाम भी सम्मन था। उस पर हस्ताक्षर करने के लिए मैं बैठक में पहुँचा। दादा के किसी प्रश्न के उत्तर में चपरासी कह रहा था—आपके यहाँ जो डाकू आये थे उनका सम्बन्ध विक्रमसिंह के दल से न था। इधर-उधर के कुछ दूसरे बदमाश उसके नाम पर ये डाके डाल रहे थे। हाँ, विक्रमसिंह भी पकड़ लिया गया है। दुबला-पतला मामूली आदमी है। मैं समझता था, बड़ा बहादुर होगा। परन्तु उस दिन देखा, जंट साहब की अदालत में एक छोटे बच्चे की तरह रो रहा है।

दिन भर मेरे मन में विक्रमसिंह की ही बात चक्कर काटती रही। यही है वह विक्रमसिंह, जिसका झूठा नाम सुन कर बात की बात में सहस्रों मनुष्य डर के मारे इधर-उधर गन्दी जगहों में छिपते फिरते थे! यदि आज मैं यह सुनता कि कठोर से कठोर दण्ड की उपेक्षा करके वह हथकड़ी-बेड़ी के बीच में भी प्रसन्नता-पूर्वक हँस रहा है, तो थोड़ी देर के लिए ही सही, मेरी श्रद्धा का पात्र हुए बिना वह न रहता, फिर उसका कृत्य कितना ही क्रूर और कुत्सित क्यों न होता। हम लोग उस दिन प्राण लेकर भागे भागे फिरे, वह क्या इसीके डर से? इतने बड़े साम्राज्य की महान् शक्ति से सुरक्षित हम सबकी लज्जा बचाने के लिए इस कापुरुष से इतना भी न हुआ कि हाकिम के सामने घड़ी भर खुलकर हँस तो लेता। रोना ही था तो क्या उसकी जेल की कोठरी में आग लग गई थी?

परन्तु मैं भूल रहा था। हमारे समाज ने उस दिन की लज्जा सहज ही बचा ली थी,—अपने को अहिंसक और सदाचारी घोषित करते हुए, 'हत्यारे' रामलाल की समस्त वंश-परम्परा की अवमानना करके! आज मैंने अपना समाधान कुछ दूसरे शब्दों में किया। बड़ी बड़ी शक्तियाँ, जो बाहर से हिमालय के समान ऊँची दिखाई देती हैं,

भीतर से वास्तव में खोखली हैं; ऐसी ही, जैसी इस विक्रम-सिंह की महत्ता। यदि मनुष्य की समझ में यह साधारण बात आजाय तो न तो समाज, न साम्राज्य, न पूंजीवाद, कोई भी उसका रक्त चूसने का साहस नहीं कर सकता। यह भय का भूत दूर करना चाहिए, यह समझ कर ही मानों मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया!

उस रात बड़ी देर के बाद जब मैं कुछ सो सका, तब भी दुःस्वप्नों के बीच जागता ही रहा। मैंने देखा, एक बहुत बड़ी भीड़ के बीच में खड़ा खड़ा विक्रमसिंह मृत्यु के डर से बुरी तरह रो रहा है। सारी की सारी भीड़ निष्प्राण और निस्पन्द है। मानों मृत्यु की विभीषिका ने उसे भी आच्छन्न कर रक्खा है और वह खुलकर एक चीत्कार भी नहीं कर सकती।

हमारे यहाँ से दो कोस दूर के एक गाँव का मुखिया टेकसिंह नाम का एक व्यक्ति था। साहूकारी, लेन-देन, कुछ जमींदारी और पुलिस एवं तहसील से रसाई आदि जितनी भी बातें देहात में लोगों को सताने और डराने के लिए आवश्यक हैं, उनमें से कोई भी ऐसी न थी, जो थोड़ी-बहुत उससे सम्बन्ध न रखती हो। मेरे यहाँ जो लोग डाका डालने आये थे, उनमें से एक वह भी था। रामलाल जिस

समय बन्दूक चला कर फैर कर रहा था, उस समय भागते हुए डाकुओं में से किसी के मुहँ से अपना नाम सुन कर उसे तत्काल टेकसिंह का ही सन्देह हुआ था। परन्तु ऐसे भयंकर व्यक्ति के विरुद्ध सन्देह के आधार पर ही कोई बात प्रकट रूप में कह डालना ठीक नहीं, यह सोच कर उस दिन उसकी वह बात वहीं की वहीं दबा दी गई थी।

इन दिनों अब दूसरे प्रमाणों के आधार पर पकड़ा जाकर, अन्य डाकुओं के साथ वह जेल के भीतर था।

वह जेल के भीतर था तो, परन्तु बाहर उसका प्रभाव काम कर रहा था। हमारे यहाँ के राजधर कान्स्टेबिल के साथ उसको अन्तरंग मैत्री थी। लोगों का विश्वास था कि गाँव में होने वाली अधिकांश चोरियाँ इस कान्स्टेबिल की संरक्षकता में ही होती हैं। इसके लिए गाँव के सब भले आदमी मन-ही-मन उससे बहुत डरते थे। अर्थात्, 'दाबजू' 'दाबजू' कहकर उन्हें आदर के साथ उसकी बहुत प्रतिष्ठा करनी पड़ती थी। रामलाल के ऊपर इधर-उधर से दबाव डाल कर वह प्रयत्न कर रहा था कि टेकसिंह के विरुद्ध अदालत में यह कोई बात न कहे।

उस दिन रामलाल सबेरे कुछ देर से काम पर आया। कारण पूछने पर उसने बताया कि आज वह राजधर के

फेर में पड़ गया था। बड़ी कठिनाई से उसने अपना पिन्ड छुड़ा पाया। राजधर ने उसे बड़ी बड़ी ज्ञान की बातें बताई थीं। समझाया था—देख, बदमाशों से झगड़ा मोल लेना भले आदमियों का काम नहीं है। किसीकी भलाई के लिए अगर अदालत में दो झूठी भी कहनी पड़ें तो अपना क्या बिगड़ता है। यह बात सब जानते हैं कि संसार में झूठ के बिना काम नहीं चल सकता। फिर कोई अदालत में झूठ न बोल सकेगा तो क्या मन्दिर में बैठ कर बोलेगा?

राजधर ने रामलाल को सब बातें खूब अच्छी तरह समझा दी थीं। फिर भी उसे सन्देह था कि यह आदमी बदमाश है, इसका विश्वास करना ठीक नहीं। टेकसिंह हो या और कोई, अदालत में यह किसीका लिहाज न करेगा। इसलिए जिस दिन हम लोग मुकद्दमे में गवाही देने के लिए सदर जा रहे थे, उस दिन उसने रामलाल को बीच में ही अपनी बातों में इस तरह उलझा रक्खा कि उसके स्टेशन पहुँचने में एक मिनट की भी देर और हुई होती तो उसकी ट्रेन चूक जाती और मुकद्दमे के समय अदालत में उसकी उपस्थिति न हो सकती। बिलकुल ठीक समय पर अचानक उसकी समझ में राजधर की चाल आ गई और वह तुरन्त ही अपने पूरे वेग से स्टेशन के लिए दौड़ पड़ा। शीटी देकर गाड़ी चल

पड़ी थी, जिस समय उसने रेल के डिब्बे के भीतर अपना पैर रक्खा।

रामलाल ने गवाही देते हुए अदालत में जो कुछ कहा, उससे न तो टेकसिंह सन्तुष्ट हो सकता था और न उसका हितैषी राजधर ही। परन्तु माँ की बीमारी के कारण इन बातों के परिणाम की ओर ध्यान देने का समय हमारे पास न था।

१६

माँ की अवस्था दिन पर दिन बिगड़ रही थी। दो दिन से उन्हें स्नान नहीं करने दिया गया था; करना चाहतीं तो करने की शक्ति भी उनमें न थी।

स्थानीय वैद्य की चिकित्सा हो रही थी। स्थानीयता एक ऐसी अधूरी वस्तु है, जो किसी जगह कभी पूरी नहीं होती। बड़े से बड़े वैद्य और डाक्टरों के केन्द्र में रह कर भी आदमी का मन बाहर की ही ओर दौड़ता है। फिर हमारा स्थान तो एक ऐसा देहात था, जो शहर की बुराई का कूड़ा-घर तो आसानी से बन सकता है, परन्तु जहाँ उसकी अच्छाई दो घड़ी के लिए मेहमान बनाकर भी नहीं रक्खी जा सकती। इसलिए इस संकट के समय स्वभावतः मुझे सदर के एक वैद्य की याद आई। डाक्टरी ओषधि माँ के लिए ग्राह्य न थी। दादा का भी यही हाल था।

बाहर के वैद्य को बुलाने की बात सुनकर माँ ने कहा—भैया, किसी दूसरे को मत बुला। अच्छी होने को हूँगी तो अपने बैदराज की दवा से ही हो जाऊँगी।

मैंने कातर होकर कहा—माँ, हम सबको सदा के लिए इस बात की कसक न रहने दो कि हमने माँ की दवा-दारू भी अच्छी तरह नहीं की। ऐसी आज्ञा न करो माँ!

नये वैद्य की दवा से तुरन्त लाभ दिखाई दिया। ज्वर में भी कमी हुई और जी की बेचैनी भी घटी। दादा को और हम सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। दादा तो इन दिनों बहुत व्याकुल थे। उनका खान-पान तो क्या, भजन-पूजन भी बहुत कम हो गया था। मुझे डर लग रहा था कि कहीं उनके लिए भी दूसरी खटिया न बिछानी पड़े। नई चिकित्सा ने अकेले माँ को ही आराम नहीं पहुँचाया, वरन् उसके प्रभाव से घर भर ने अपने को स्वस्थ अनुभव किया।

हँसते हुए मैंने कहा—देखो माँ, तुम कह रही थीं, बाहर का वैद्य आकर क्या करेगा; परन्तु अब तुम्हें मालूम हुआ होगा कि पढ़े-लिखे और बिना पढ़े-लिखे सब ब्राह्मण एक-से नहीं होते।

माँ ने रोष प्रकट किया। उनका रोष भी वैद्यों का मधु-मिश्रित रस होता था, डाक्टरों का कड़ुवा कुनैन नहीं।

बोलीं—ब्राह्मणों को लेकर यह हँसी मुझे अच्छी नहीं लगती। क्या अपने बैदराज मूर्ख हैं ?

माँ के भाव से मालूम हुआ कि गाँव के वैद्य की श्रेष्ठता दिखाने के लिए यदि उनकी तबीयत फिर पहले जैसी ही हो जाय तो उन्हें सन्तोष हो।

"नाराज व्यर्थ होती हो माँ, मैंने तो ठीक ही कहा था। अच्छा तुम्हीं कहो, रंगून और देहरादून के चावल एक-से होते हैं ?"

माँ हँसने लगीं। बात यह थी, प्रयत्न करने पर भी वे अब तक मुझे घटिया और बढ़िया चावलों का भेद न समझा सकी थीं। जो चावल घटिया होते थे, प्रायः मैं उन्हें बढ़िया कह बैठता था, और ऐसा ही इसके विरुद्ध। मँहगे और सस्ते के अनुसार भले-बुरे कह देने में भी निस्तार न था। इसलिए हार कर अभी कुछ दिन पहले मैंने उनसे कहा था—माँ, जिस तरह तुम्हारे लिए ब्राह्मण मात्र पूज्य हैं, उसी तरह तुम्हारे हाथ से जो कुछ भी तैयार हो जाता है, वही मेरे लिए असाधारण है। जगन्नाथ के भात में भी क्या बढ़िया और क्या घटिया, वह तो भगवान् का प्रसाद है !—यह बात उस दिन मैं कहना तो हँसी में चाहता था, परन्तु कहते कहते ही प्रतीत हुआ कि

एक विशुद्ध सत्य मेरे मुहँ से निकल पड़ा है और इसके साथ ही मेरा भीतर-बाहर एक अपूर्व आल्हाद से पुलकित हो उठा।

मैं बोला—अब की बार तुम अच्छी हो जाओ माँ, फिर देखना, मैं तुम्हारे रसोई-शास्त्र का कितना पण्डित हो गया हूँ। रसोई की परख करने में लगता क्या है; कह दिया—इसमें नमक कम है, उसमें मिर्च ज्यादा, घी कुछ पुराना जान पड़ता है; दाल—वह पहले वाली बहुत अच्छी थी। गिनी-गिनाई यही तो दो चार बातें हैं, जिन्हें सुनकर तुम कहने लगोगी, अब इसे रसोई की परख आ गई!

चुपचाप ऊपर की ओर हाथ उठाकर माँ ने प्रकट किया—भगवान् की जैसी मरजी!—मुझे झट एक धक्का लगा। मैं प्रसन्न हो रहा हूँ और माँ समझ रही हैं कि इस बार वे बच नहीं सकतीं। मेरे मुहँ से कोई बात न निकल सकी।

रामलाल कहने लगा—माँ, भगवान् की मरजी तो है ही; उन्हींकी मरजी से तुम्हारी तबीयत अच्छी होने में तीन चार दिन से अधिक न लगेंगे। बैदराज तो कहते थे कि उनके पास ऐसी दवा है, जिससे वे चाहें तो घड़ी भर के

भीतर तुम्हारा ज्वर दूर कर सकते हैं। परन्तु ऐसी दवाएँ बहुत बड़ी जरूरत के समय ही काम में लाई जाती हैं। सचमुच माँ, वे बहुत बड़े बैद हैं। रोगी को घर जाकर देखने के एक वार में चार रुपये लेते हैं, फिर भी उन्हें आदमी घेरे ही रहते हैं। दूकान में काँच को अलमारियों के भीतर दवाएँ ही दवाएँ भरी दिखाई देती हैं। सब बोतलों के ऊपर उनके नाम की छपी हुई चिटें लगी हैं। बड़े बड़े राजा तक उन्हें अपने यहाँ बुलाते हैं। मुझे तो पूरा विश्वास है कि तुम तीन चार दिन के ही भीतर राम-कृपा से अच्छी हो जाओगी। माथे पर अब तनिक हवा कर दूँ।

पंखा लेकर वह हवा करने लगा।

वैद्यराज ने व्यवस्था की थी कि रोग के चढ़ाव-उतार का पूरा समाचार देने के लिए प्रति दिन उनके पास एक आदमी रेलगाड़ी से भेजा जाय। यह काम रामलाल को सहेजा गया था। मैंने कहा—रामलाल, तेरी गाड़ी का समय हो गया, तू स्टेशन जा। ला, पंखा मुझे दे दे।

उसने कहा—बैठक में घड़ी देख आया हूँ, गाड़ी में अभी डेढ़ दो घन्टे की देर है।

माँ ने उससे पूछा—तूने रोटी खाली?

अतिरिक्त उत्साह के साथ उसने कहा—वाह माँ, तुम भी खूब हो ! अभी तक कोई भूखा रह सकता है ? तुम समझती हो, तुम देख-भाल नहीं करतीं, इसलिए सब उपास ही करते हैं। भैया, मैं, दादा और सब कभी के खा चुके।

उत्साह की अधिकता में वह यह भूल गया कि उसे दादा का नाम नहीं लेना चाहिए था। उनके नित्य के भोजन का समय ही अभी नहीं हुआ था। इसीसे उसका झूठ माँ से छिपा न रहा। वास्तव में इन दिनों रसोई की व्यवस्था ठीक न थी। अभी थोड़ी ही देर पहले घर का चूल्हा सुलगा था। मैंने बासी पूड़ियों का जल-पान कर लिया था। सम्भव है, रामलाल भी कुछ खा-पी चुका हो; परन्तु दादा के खा-पी चुकने की बात इसने क्यों बीच में जोड़ दी ?

माँ ने एक साँस ली।—हाय माँ, तुम व्यर्थ ही सबके खाने-पीने की बात सोच सोच कर घुली जा रही हो ! हम लोग इस भुलक्कड़ संसार के जीव हैं। आज भी हम सब पेट भर कर खाते-पीते हैं और हमें छोड़ कर जब तुम चली जाओगी, तब भी हा-हा ठी-ठी करते हुए भर-पेट खा पीकर आनन्द करेंगे। मरेंगे तो बहुभोजन के अजीर्ण से ही मरेंगे, भोजन के अभाव से नहीं। फिर आज इस

साधारण बात को लेकर तुम क्यों अपने जी को इतना क्लेश पहुँचाती हो ?

मैं वहाँ बैठा न रह सका, उठ कर झट से दूसरे कमरे में चला गया।

हमारी घड़ी उस दिन आध घन्टे सुस्त थी। उस ट्रेन से आये हुए एक सम्बन्धी से मालूम हुआ कि रामलाल को गाड़ी नहीं मिली। जब वह छूट चुकी थी तब बीच रास्ते में स्टेशन के लिए दौड़ता हुआ रामलाल उन्हें दिखाई दिया था। हम लोगों को उस पर बहुत गुस्सा आया। घन्टे आध घन्टे पहले चला जाता तो यह ट्रेन क्यों चूकता? बाबू साहब घड़ी देखकर स्टेशन चलते हैं। बदमाश कहीं का।

सदर के लिए चौबीस घन्टे में एक यही ट्रेन थी। अब किसीको वहाँ के लिए बैलगाड़ी से भेजते हैं तो बीस-पच्चीस मील की यात्रा में वह पूरा एक दिन-रात खा जायगी। हम सब एकदम बहुत परेशान हो उठे। दूसरे दिन के लिए दवा बिलकुल न थी।

नाखुशी के डर से रामलाल घर लौट कर भी न आया। उसके यहाँ आदमी भेज कर दिखवाया, वहाँ भी उसका पता न चला। सबने कहा—गाड़ी चूक गई तो उसे यहाँ

आकर कहना तो चाहिए था। परन्तु अब वह कुछ ऐसा ही हो गया है; अपने को बहुत अधिक लगाने लगा है। पाँच सात रुपट्टी के नौकर को मुहँ लगाने का फल यह न होगा तो और क्या। देखना तुम, मौका लगे तो मालिक की गद्दी पर जा बैठेगा। डर-वर उसे किसीका नहीं। खुद-मुख्तार है, फिर यहाँ आकर किसीको गाड़ी चूक जाने की खबर देने से उसे क्या प्रयोजन?

माँ ने कहा—अरे तुम सब उस पर इतने गुस्सा क्यों हो रहे हो; क्या जान-बूझकर उसने गाड़ी चुका दी? लड़का है, भूल हो गई सो हो गई। न हो, कल अपने बैदराज की दवा खिला देना। हमें तो उन्हींकी दवा से फायदा होता है।

वह रात बड़ी कठिनता से बीती। सहसा ज्वर की बेचैनी और कफ बढ़ गया। माँ रात भर एक क्षण के लिए भी न सो सकीं।

दूसरे दिन सबेरे रामलाल दिखाई दिया। गुस्सा होकर कुछ कहने ही वाला था, तब तक देखा, उसके हाथ में सदर के वैद्य की दवा की बोतल है। चकित होकर मैंने पूछा—कल तो तेरी ट्रेन चूक गई थी, फिर आज ये दवाएँ लेकर ठीक समय पर कैसे आ गया?

उसने कहा—गाड़ी चूक गई थी तो क्या हुआ, पैर तो बरकरार थे। ऐसे समय भी काम न आते तो क्या माँ ने जेट जेट भर रोटियाँ खिला कर व्यर्थ ही उन्हें मोटा किया? गाड़ी को बीच में तीन चार स्टेशनों पर रुकना पड़ता है, परन्तु मैं तो सरपट बाँधे चला ही गया। फिर भी बैदराज की दूकान पर दो ढाई घन्टे देर से पहुँच सका। थोड़ी ही देर और होती तो वे वहाँ न मिलते। दूकान बन्द ही कर रहे थे; फिर लौटने में भी रेल न मिलती। माँ की तबियत कैसी है?

मेरा गला भर आया। यह इसी महावीर का काम है जो पथ के इस महान् द्रोणाचल का भार अपने ऊपर लेकर मृतसंजीवनी ले आया। औषध से न हो सके तो हे राम, इसकी इस प्रबल शुभ कामना के द्वारा ही मेरी माँ को इस बार नीरोग कर दो!

हम समझ रहे थे कि रात भर के कष्ट के उपरान्त इस समय माँ सो रही हैं। इसीसे बातचीत धीरे धीरे कर रहे थे। तब तक आँखें खोल कर उन्होंने रामलाल को पास बुलाया और कहा—तू वहाँ तक पैदल क्यों गया, तुझे कुछ हो जाता तो? खबरदार, जो अब कभी ऐसी नासमझी की।

१७

वैद्य ने भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने कभी प्रति दिन, कभी एक दिन के अन्तर से आ आकर रोगीकी देख-भाल की, नई नई दवाएँ बदलीं; परन्तु परिणाम सन्तोष-जनक न हुआ। रोग का कष्ट बढ़ता ही गया।

मैं सोचता, क्या किसीको पीड़ा पहुँचाये बिना यह रोग अपना काम पूरा नहीं कर सकता? मनुष्य ने नये नये साधनों से अपनी यात्रा की दूरी निकट तर करके विशेष सुख-साध्य कर ली है, परन्तु यह आज तक मृत्यु के पूर्ण विराम तक पहुँचने में उसी छकड़ा गाड़ी का प्रयोग करता आ रहा है, जिसे सभ्य समाज ने कभी का छोड़ दिया। पीड़ा और कष्ट ही मानों इसका जीवन है। हमारे अपने लिए आग की ज्वाला भले ही आग की ज्वाला हो, परन्तु स्वयं उसके निज के लिए,—उसके निज के लिए तो वही उसकी सब कुछ है।

वैद्य के सम्बन्ध में मुझे कुछ शिकायत नहीं। वे जो कुछ कर सकते थे, वह उन्होंने किया। धन्वन्तरि, चरक और सुश्रुत भी इससे अधिक कुछ न कर सकते। हमारे बीच में उन्हें रहने न देकर मृत्यु ने ही चिरकाल के लिए उनका सम्मान बचा लिया है।

धन्वन्तरि, चरक और सुश्रुत को हम न पा सके, यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु इससे भी अधिक दुर्भाग्य की बात यह होती, यदि माँ की सेवा-सँभाल के लिए रामलाल जैसा व्यक्ति हमारे बीच में न होता।

साढ़े तीन आने रोज से कुछ अधिक ही उसे मिलता था। इसके बदले में जो काम वह करता था, सम्भव है, उसकी बाजार दर इतनी ही हो। परन्तु लेन-देन के इस सौदे में अपनो मातृभक्ति और आत्मीयता के रूप में, ऊपर से जो रूँगन वह दे रहा था, क्या उसका मूल्य कुछ नहीं? हाँ, उसका मूल्य कुछ नहीं। जीवन के लिए स्वच्छ जल-वायु को भाँति वह तो यों ही मिल गया था। उसका मूल्य ही क्या!

माँ के सिरहाने बैठ कर वह रात रात भर पंखा डुलाता, यथा समय दवा देता; पानी पिलाता; जब आवश्यक होता दूसरी ओर उनकी करवट बदल कर, उसी ओर उनके सामने बैठ जाता। हाय माँ, यदि इस व्यक्ति का मूल्य

साढ़े तीन आने से अधिक नहीं, तो मैं तो आधी पाई के योग्य भी अपने को नहीं पाता।

बीच बीच में वह ऐसी मनोरंजक वार्त्ता छेड़ देता, जो माँ के लिए औषध से भी अधिक अच्छी बैठती। कहता—माँ, हरी भैया का विवाह तुमने खूब सोच समझ कर ठीक किया है। हमारी भौजी तुमसे अच्छा रसोई-पानी करेंगीं।

"हमसे अच्छा ! तू तो झूठ-मूठ बकता है। अभी लड़किनी ही है, रसोई-पानी में क्या जानें। पढ़ी-लिखी तो है, कुछ दिन मैं सिखा पाती तो घर गिरस्ती का सब काम जल्दी सीख जाती।"

"सिखाओगी माँ, तुम्हीं सिखाओगी। तुम समझ रही हो कि इस बीमारी में अब बच नहीं सकतीं। परन्तु अभी तुम्हें बचना पड़ेगा। तुम न रहोगी तो हमारी भौजी लड़ेंगीं किससे ? सास-बहू की लड़ाई के विना तो सब मजा ही फीका है। अच्छा माँ, लड़ाई में भैया को भौजी की ओर रहने देना, मैं तुम्हारी ओर रहूँगा। क्यों है न ठीक ?"

इसके बाद वह तुरन्त ही भूल जाता कि वह अपनी भौजी के दल का योद्धा नहीं है और तुरन्त ही विपक्ष की उस स्वामिनी की प्रसंशा करने लगता। माँ

अनुभव करने लगतीं कि वे अपने अभिलषित सुन्दर भविष्य में अनायास ही पहुँच गई हैं और वर्त्तमान में भी उनके लिए रोग-कष्ट का कोई उपद्रव नहीं है।

मैं बगल वाले दूसरे कमरे में बैठा था, उस दिन माँ उससे कह रही थीं—देख रामलाल, अब मैं बचूँगी नहीं। मेरे बाद हरी का विवाह फिर न टल जाय, मुझे इसी बात की चिन्ता है।

उसने कहा—माँ, तुम चिन्ता न करो, विवाह न टलेगा।

माँ का समाधान न हुआ। कहने लगीं—हरी विवाह के लिए जल्दी तैयार न होगा।

"भैया तैयार न होंगे, तुम यह कैसी बात कह रही हो? तुम आज्ञा दो तो वे आग में कूद पड़ें, फिर यह तो विवाह है। उनकी यही बात तो मुझे सबसे अच्छी लगती है।"

"देख, मैं तो हरी से कह ही जाऊँगी, तू भी समझा देना।"

रोगवृद्धि के साथ साथ मुन्नी को देखने के लिए माँ का जी छटपटाने लगा। उसे ले आने के लिए गाड़ी भेजी गई। उन लोगों की दी हुई अवधि के पहले ही

हमने उसे बुलाना चाहा, इस बात का दण्ड जो कुछ हो सकता था, वही हुआ। रीती गाड़ी वापस लौट आई। निस्सहाय बहिन के हृदय की बात सोच कर हम सबकी छाती फटने लगी। ऐसी भी निष्ठुरता हो सकती है, मैं इस बात की कल्पना तक न कर सकता था। पुराने समय में कुछ लोग पैदा होते ही कन्या को तुरन्त मार डालते थे। आज मुझे मालूम हुआ कि हम लोगों की अपेक्षा वे लोग अधिक दया-शील थे। वे लोग कन्या-जाति का हनन एक बार ही करते थे। किन्तु हमारी सद्यता ऐसी है जो हमारे द्वारा जीवन भर उसका हनन करती और कराती रहती है। फिर भी अपनी श्रेष्ठता का डंका पीटते हुए हम नहीं थकते।

माँ की छाती पर सिर रख कर मैं बड़े जोर से रो उठा। माँ ने चुपचाप एक साँस लेकर वह आघात सह लिया।

उसी दिन से उनकी तबीयत एकदम बिगड़ उठी।

क्रमशः वह भयंकर समय निकट आ गया। दिन के तीसरे पहर से ही उन्हें हिचकी और श्वास का कष्ट बहुत बढ़ उठा। उनके संकेत के अनुसार हमने उन्हें पृथ्वी पर नीचे एक कम्बल के ऊपर लिटा दिया।

पुरोहितजी गीता-पाठ कर रहे थे, रामलाल 'राम राम सीताराम' की धुन। दादा की और मेरी क्या दशा थी, कह नहीं सकता।

रामलाल सहसा वहाँ से उठा और मेरे कमरे से मेरे पिता का फोटोग्राफ उठा लाया। 'राम राम' की धुन के साथ उसने उसे माँ की दृष्टि के ठीक सामने टाँग दिया। माँ मानों जो कुछ चाहती थीं, वह उन्हें मिल गया। उनकी आँख के कोयों से आँसू ढलकने लगे।

अन्तिम समय में उनकी सारी रोग-पीड़ा शान्त हो गई। घर-गिरस्ती की कोई बात उन्होंने नहीं की। शान्त चित्त से 'सीताराम सीताराम' कहते कहते वे हम सबको छोड़ गईं।

स्मशान में माँ का चिता-दाह करके जब हम लोग अपने आपके भीतर डूबे हुए चुपचाप लौटने को हुए, उस समय रामलाल पागल-सा हो रहा था। हमें समझाने के स्थान पर लोग उसे समझा रहे थे। वह कह रहा था,—मैं इस घर में क्यों आया? मेरी माँ तो छुटपन में ही मुझे छोड़ गई थी। फिर हे राम, दो दो बार माँ के मरने का यह दुःख मुझे क्यों दिया?

दो तीन आदमी उसे वहाँ से बल-पूर्वक ही खींच ला सके।

१८

एक सप्ताह बाद मुन्नो फेरे के लिए आ सकी। आते ही मेरे कन्धे पर सिर रख कर रोने लगी—भैया, मेरी माँ,—मेरी माँ कहाँ गई ?

बहिन मेरी, मैं क्या बताऊँ तुझे—तेरी माँ कहाँ गई। मेरे मन में भी तो यही प्रश्न दिन-रात उठा करता है। मुझे भी इसका उत्तर कहीं नहीं मिलता, फिर तुझे क्या बताऊँ। पोथी-पत्रे सब झूठ हैं; जी में आता है, सबके सब आग में झोंक दूँ। उनकी बात कह कर आज मैं तुझे न झुठलाऊँगा। रो बहिन, रो। जी भर कर आज तू रो और मैं भी रोऊँ; न तू मुझे रोके और न मैं तुझे। जो रोक सकती थीं आज वे नहीं हैं। अब तो पूरी स्वतन्त्रता है।

बहिन, कुछ पहले और आ जाती तो अच्छा था। माँ ने अन्तिम समय कुछ कहा नहीं, परन्तु तुझे देख पातीं तो

हमीं सबको कुछ कम शान्ति न मिलती। तू आज आ सकी, इसे भी मैं अपना भाग्य ही समझता हूँ। माँ तो निठुर निकलीं, हम सबको छोड़ कर चली गईं; इस तरह छोड़ कर चली गईं, मानों हम सब उनके कोई न हों। तू आ सकी, यही बहुत है।

जिस स्थान पर माँ की अन्तिम शय्या हुई थी, वहाँ जाकर धरती पर सिर पटक पटक कर वह रोने लगी।

परन्तु हाय! मुझे इतना अवकाश कहाँ, जो लगातार घड़ी भर बैठ कर रो भी सकूँ। बिना काम की एक बूढ़ी से पिन्ड छूटा, इस आनन्द के उपलक्ष में समाज को पिशाची क्षुधा एकाएक जाग पड़ी है। उसकी रसना-लिप्सा के लिए मुझे मोहनभोग, लड्डू, खीर, मालपुआ और न जानें किन किन वस्तुओं का प्रबन्ध करना है। श्राद्ध में केवल अपने ही गाँव के आदमियों को तृप्ति का आयोजन न होगा; आस पास के चार छः गाँवों में जितने भी गुन्डे, बदमाश और प्रमुख व्यक्ति हैं, उन सबको बुलाना पड़ेगा। सबकी सन्तुष्टि और सत्कार का प्रबन्ध करना होगा। दादा माँ के फूल लेकर अयोध्याजी गये हैं, उनके लौटने तक इस आयोजन की व्यवस्था मैं न करूँगा तो कौन करेगा? मेरी माँ नहीं है, अब मैं बच्चा थोड़े ही हूँ। मुझीको यह सब करना होगा।

देखने को तो माँ का शव-दाह हो चुका, आग भी ठंढी पड़ चुकी; परन्तु लोग क्या जानें, मेरी छाती पर अब तक उनकी चिता धक-धक जल रही है, फिर भी उसमें उनका एक केश तक नहीं झुलसा !

नहीं नहीं, लोग सब जानते हैं । जो आपत्ति मेरे ऊपर पड़ी है, वह और भी बहुतों के ऊपर पड़ चुकी होगी । कापालिक की मृत-साधना इस समाज का स्वभाव है । संसार में जीवित की अपेक्षा मृत ही दुर्लभ हैं । किसी मृत को देखते ही यह समाज उसके शव के निकट आसन मार कर स्वादिष्ट भोजन के लिए चंचल हो उठता है । यह उसकी एक धार्मिक विधि है !

जहाँ तक मालूम हो सका, श्राद्ध की धूम धाम में कोई त्रुटि नहीं हुई । हजार आठ सौ आदमियों ने एक साथ बैठ कर भोजन किया । भोज के समय रामलाल की सूरत भी न दिखाई दी । पूछने पर मालूम हुआ कि जान-बूझ कर स्वयं ही वह किसी दूसरे गाँव चला गया है । सम्भव है, उसकी उपस्थिति से किसी धर्मध्वजी को आपत्ति होती । माँ के श्राद्ध में किसीको किसी तरह का भीतरी असन्तोष भी न होना चाहिए । सबने उसकी बुद्धिमत्ता की प्रसंशा की ।

सत्य नहीं छिपाया जा सकता। इतने लोगों को अपने घर एक साथ देख कर मुझे सान्त्वना ही मिली। जिन लोगों को उनके कृत्यों के कारण मैं घृणा करता था, उन्हें भी उस समय मैं द्वेष-दृष्टि से न देख सका। केवल एक बात की कसक रही। भोज की सीमा के बाहर कुछ ऐसे भी स्त्री-पुरुष और बच्चे थे, सम्भव है, कई दिन से जिनके मुहँ में दाना भी न गया हो। उन सबकी तृप्ति कर सकने योग्य सामग्री हमारे भन्डार में न थी।

परन्तु नहीं, मैं सन्तोष ही करूँगा। हजार व्यक्तियों के बीच में यदि दो चार भी यथार्थ अधिकारियों ने उस दिन तृप्ति पाई हो, तो इतने से भी मेरी माँ को आत्मा को सुख पहुँचा होगा। उस अपव्यय की यह सार्थकता भी कम नहीं।

१६

मुन्नी अपने घर गई, दादा अपने भजन-पूजन और गृह-कार्य में लगने लगे, मैं अपनी पुस्तकों के पन्ने उलटने-पुलटने लगा और रामलाल उसी तरह गाय की सार साफ करने, पानी भरने आदि कामों में लग गया। बीच बीच में हमारे कमरे के भीतर से वैसे ही हास-विनोद और अट्टहास की ध्वनि निकल कर बाहर गूँजने लगी। सब कुछ पहले की ही भाँति होने लगा। फिर मैं यह कैसे मान लूँ कि इस संसार में दुःख की ही अधिकता है। अपने इस सबसे बड़े शोक के समय में महीने दो महीने भी मैं आँसू न बहा सका। इतने बड़े जीवन में दुःख के ये आँसू ऐसे ही दुर्लभ हैं ! इन मधुर आँसुओं का एक ही कण पाने के लिए आज मुझे कुछ सोचना विचारना पड़ता है। अच्छा है, जब माँ को ही काल के हाथ से न बचा सका तो

इन आँसुओं को कैसे बचा सकूँगा ? ये भी तो चिर पवित्र और चिर स्वर्गीय हैं। स्वर्ग की वस्तु यहाँ चिरकाल तक नहीं रह सकती। ठीक है।

एक दिन सुना, प्रमाणाभाव में टेकसिंह छोड़ दिया गया है। प्रमाणाभाव में वह क्या, ईश्वर तक छोड़ दिया जाता है। रामलाल और अन्य लोगों ने अदालत में टेकसिंह के विरुद्ध जो कुछ कहा था, वह कान का प्रमाण था, आँख का नहीं। और हमारी अदालतें हैं आँखों ही आँखों की,—चक्षुश्रवा! यह अच्छा ही है; अन्यथा न तो वे स्वयं और न हम, कोई भी क्षण भर विश्राम न पा सकते। मैंने यह समाचार जैसा सुना, वैसा न सुना। उन दिनों वास्तव में मैं न कान रखना चाहता था, न आँख।

दो चार दिन बाद ही मालूम हुआ, यह मेरी भूल थी। संसार में कान की भी आवश्यकता है और आँख की भी।

उस दिन रामलाल के बाप मोहन माते ने आकर दादा से कहा—भैया, मैं रमला की छुट्टी लेने आया हूँ।

दादा ने कहा—छुट्टी की क्या जरूरत, यहीं छुट्टी की तरह रहे। उससे भी कह दिया था कि, तेरा जी ठीक नहीं

है, आज कल तू कुछ काम-काज न कर। परन्तु उसने माना नहीं। काम में लगे रहने से उसका मन भी कुछ भूला रहता है। अकेले में पड़ कर आज भी वह रोने लगता है।

दादा की आँखें छलछला उठीं। बूढ़े को संकोच-सा होने लगा, फिर भी बोला—हाँ भैया, ऐसी ही बात है। छुटपन से उसने इस घर की रोटी खाई है। यहाँ वह छुट्टी पर रहने जैसा ही रहा है। परन्तु अब—ऐसी बात है—

बूढ़ा अपनी बात न कह सका। दादा भी कुछ न पूछ सके। दोनों क्षण भर चुप रहे।

थोड़ी देर बाद उसने स्वयं ही कहा—भैया, अब हम लोग यह गाँव छोड़ कर जाना चाहते हैं। यहाँ रहने में रामलाल की जान का अन्देसा है। टेकसिंह माते कब क्या कर गुजरें, कुछ ठीक नहीं। कानिस्टबिल साब उनके मित्री हैं, वे भी बुराई मानते हैं। इसीसे—और बहू भी भागकर मायके चली गई। वहाँ के गुलाबसिंह माते का उसका कुछ—और बातों में क्या, वह वहीं रहेगी।

तो रामलाल भी हमको छोड़ जायगा! जा भाई, तू भी जा; तेरा भी समय हो गया। यहाँ का समाज अब

तुझे और नहीं सह सकता। उसके धर्म का पालन तू न तो डाकुओं के आने के दिन ही कर सका और न अदालत में गवाही देते समय भी। अब तू यहाँ और नहीं रह सकता!

परन्तु तू जायगा कहाँ? पन्द्रह बीस कोस की दूरी के एक गाँव में जाकर ही क्या तू इस समाज की राज्य-सीमा के बाहर हो जायगा? यह असम्भव है। गाँव गाँव में भिन्न भिन्न नामों से टेकसिंह, राजधर और गुलाबसिंह विराजमान हैं और तू है विद्रोही। तेरे लिए तो वहीं संकट है, जहाँ तू जायगा।

उसी दिन रामलाल को अपने कमरे में बुलाकर मैंने पूछा—क्या राजधर और टेकसिंह का ऐसा ही डर है, जो गाँव छोड़े बिना नहीं बन सकता?

उसने कहा—मुझे तो कुछ डर नहीं; लोगों ने बप्पा को ही डरा दिया है।

"फिर तूने उन्हें समझाया नहीं?"

"समझाता क्या, वे किसीकी मानेंगे थोड़े ही।"

"तो फिर तू भी यहाँ से जाना ही चाहता है?"

"हाँ भैया, है तो ऐसी ही बात। अब मेरा मन यहाँ लगता नहीं। कुछ दिनों से यह मन न जानें कैसा हो गया है। रात को अच्छी नींद नहीं आती। बीच

बीच में जी चाहता है,—कह नहीं सकता,—न जानें क्या कर बैठूँ।"

मैंने उद्विग्न होकर पूछा—क्या कर बैठना चाहता है? बात क्या है, अब तक तूने साफ साफ कुछ क्यों नहीं कहा?

फीकी हँसी हँसकर वह बोला—तुम घबराओ मत भैया, मैं आत्मघात न करूँगा। मेरा गुस्सा किसी दूसरे पर है। अब तक माँ थीं, वे मुझे बहकने न देतीं; उनकी एक बात से ही मैं ठीक समय पर सँभल सकता था। परन्तु अब तो मेरे मन ने हारी बोल दी है! मुझे विश्वास नहीं है कि अब मैं अपने को सँभाल सकूँगा।

अब समझा, यह गुलाबसिंह की बात कह रहा है। इसकी स्त्री उसीके यहाँ रहती है; लुक-छिपकर नहीं, उजागर। ऋणी होने के कारण उसके बाप आदि भी इस काम में उससे सहमत-से ही हैं। ऐसे में भड़ककर किसी दिन रामलाल यदि कोई भयंकर काम कर गुजरे तो असम्भव नहीं। मैंने उसे समझाया—देख रामलाल, जो हुआ, हो चुका। समझ ले, तेरी यह स्त्री मर चुकी। बुरा काम करने वालों का विचार भगवान् करेंगे। इस तरह जी छोटा करने से कुछ लाभ नहीं।

एकाएक उसकी आँखें जल उठीं। बोला—मैंने भी समझ लिया है कि रानी मर चुकी। परन्तु जिसने उसे फुसला कर, रुपये का लोभ देकर उसकी यह हत्या की है, इसका दण्ड मैं उसे न दूँ ? जो काम मैं कर सकता हूँ उसका बोझ भी भगवान् के ऊपर पटकना बड़ी भारी कायरता है।

यह तो मेरी ही बात है, जो किसी दूसरे प्रसंग पर मैंने इससे कही थी। सान्त्वना देकर मैंने उसे बिठाया। कहा—देख, इस तरह के विचार ठीक नहीं। कुछ काम ऐसे हैं जो भगवान के ऊपर ही छोड़ देने चाहिए। धर्म की ऐसी ही आज्ञा है। बहुत होगा, किसी दिन तू उसे मार डालेगा। परन्तु यह तो उस नीच के लिए बहुत साधारण दण्ड है। हम हिन्दू लक्ष्मी को भगवान की अर्द्धांगी समझ कर माता कहते हैं। उनके द्वारा इसने साधारण कुट्टिनी का काम लिया। इसका उपयुक्त दण्ड तो भगवान ही उसे दे सकते हैं। वह बहुत दिन तक इस धरती पर नरक भोग भोगे, जहाँ निःशंक होकर वह ऐसे अनाचार कर रहा है। ऐसे अधम के ऊपर चोट करबैठना, उसके साथ उपकार ही होगा। तू ही कह, कोई उसे भला कहता है ?

उसने कहा—कोई उसे भला कहे या न कहे, आदर उसका सब जगह है। मुझसे एक अच्छा काम बन पड़ा,

इसके लिए मैं हत्यारा कहा गया। विवाह-शादी और दूसरे अच्छे कामों से मैं निकाल दिया जाऊँ, इसके लिए कोशिशें की गईं। वह तो मैं बड़े घर की छाया में था, इस लिए किसी तरह छुटकारा मिल गया, सो भी पूरी तरह नहीं, नहीं तो न जानें कहाँ कहाँ नाक रगड़नी पड़ती। और यह नरक का कीड़ा—इसके लिए कहीं रोक टोक नहीं। सब कामों में सबसे पहले बुलाया जाता है, और सबसे ऊपर बैठता है। उसके आने से किसीका धर्म नहीं जाता। सरकार का कानून भी उसका कुछ नहीं कर सकता। गाँव की पंचायत में सरपंच है; लोगों के मुकद्दमें सुनता है, उन पर जुरमाना करता है। चुपके-चुपके उसे कोई बुरा कहे तो इससे उसका क्या बिगड़ता है। सरकार का कानून है हम गरीबों को पीसने के लिए। तुमने जमीन का लगान नहीं दिया, तुमने यह नहीं किया, वह नहीं किया; तुमने ऐसा क्यों किया—बस, सरकार का काम पूरा हो गया!

उसकी उत्तेजना देख कर मुझे आशंका हुई। मैंने कहा—तू जो बातें कह रहा है, उन्हें रहने दे; मेरी एक बात का उत्तर दे,—तेरे मन में जो कुछ कर गुजरने की बात उठ रही है, माँ होतीं तो क्या उन्हें वह अच्छी लगती?

उसकी आँखों में आँसू आ गये। व्यथित होकर कहने लगा—भैया, सौगन्ध खाकर कहता हूँ, यही बात सोच कर कई वार मैंने अपने को सँभाल लिया है। माँ की एक बात मुझे बीच बीच में बहुत याद आती है। एक बार वे रामायण पढ़ रही थीं, मैंने पूछा—माँ, महावीरजी तो बहुत बड़े बली थे, वे लंका में पहुँच ही गये थे तो उसी समय रावण को मार कर सीता मैया को क्यों न छुड़ा लाये ? उन्होंने उत्तर दिया,—रावण को मारने का काम तो भगवान का था, उसे महवीरजी कैसे करते ? अभी तुम भी कुछ ऐसी ही बात कह रहे थे कि कुछ बातें भगवान् के ऊपर ही छोड़ देनी चाहिए। यही एक ऐसा आधार है, जो कुछ-कुछ मुझे थामे है। फिर भी मुझे अपने मन का विश्वास नहीं। मैं आज सँभल गया हूँ तो कौन कह सकता है कि कल भी सँभला रहूँगा। इसीसे कहता हूँ भैया, मुझे यहाँ से दूर चले जाने दो। इसीमें भलाई है।

"वहाँ नयेगाँव में तेरा कुछ सिलसिला है ?"

"हाँ, वहाँ मेरी एक मौसी हैं। उनके कोई सुत-सन्तान नहीं। दस पाँच बीघे जमीन है। वहाँ का बाजार

अच्छी मन्डी है। आप सबकी कृपा से मेहनत-मजूरी करके किसी तरह रोटी मिल ही जायगी।"

जाने के दिन दादा के पैर छूकर वह मेरे कमरे में आया। मैंने पूछा—आज जा रहा है?

"हाँ भया, एक बैलगाड़ी किराये कर ली है। तैयार है। तुम्हारी आज्ञा लेने आया हूँ।"

मैं कुछ न कह सका। कुछ देर चुप रह कर वह नीचे बिछी हुई दरी पर बैठ गया। न उसके पास कहने के लिए कुछ था, न मेरे पास। मेरे और उसके बीच में नीरवता की जो सुदीर्घ खाई पड़ने वाली थी, कमरे के सन्नाटे में उसकी भूमिका शुरू हो गई।

"तो अब जाऊँ?"

"जा भाई, और क्या कहूँ।"

फिर भी थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह उठा और आगे बढ़ कर उसने मेरे पैर छुए। बोला—तो अब चलता हूँ भैया! रास्ता ठीक नहीं है। देर हो जायगी तो बप्पा को अड़चन होगी। अपने शरीर का ध्यान रखना और मेरे सब कसूर माफ करना, मेरी इतनी ही बिनती है।

माँ की मृत्यु-शय्या वाले कमरे की ओर दृष्टि पड़ते ही क्षण भर के लिए वह ठिठक कर खड़ा हो गया और फिर

न जानें किसके लिए हाथ जोड़ कर माथे से लगाता हुआ, दूसरी ओर मुहँ फेर कर शीघ्रता से चला गया।

इसी शीघ्र गति से इस घर में उसका बरसों का समय आ दूर, न जानें कितनी दूर, कहाँ चला गया है। हाय, जो गया, वह चला गया; उसे लौटा लेने की शक्ति हममें नहीं।

२०

सात आठ साल बीत गये। रामलाल इस बीच में दो तीन बार ही मेरे यहाँ आया। भोजन करता, इधर-उधर की दो चार बातें पूछता और उसी समय चला जाता। उसका अपना घर गिरकर खँडहर हो गया था। मेरे घर के साथ उसका जो सम्बन्ध था, उसकी दशा भी उस खँडहर जैसी ही थी।

अचानक एक विवाह में नयेगाँव जाने का निमन्त्रण पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। रामलाल से मिल सकने का एक अच्छा बहाना मिल गया। उस जैसे साधारण मजदूर से मिलने के लिए, वेश्या का नृत्य देखने की इच्छा करके सिनेमा या नाटकघर जाने के जैसा कोई न कोई बहाना होना ही चाहिए। हमारी ऊँची श्रेणी के समाज का ऐसा ही नियम है।

नयेगाँव में एक माते के घर में रहने के लिए डेरा मिला। कुछ लोग बाजार में एक दूकान के ऊपर ठहराये गये थे। उस भीड़-भाड़ के स्थान की अपेक्षा यह कच्चा घर मैंने स्वयं ही पसन्द किया था।

पौर में घुसते ही बाईं ओर एक चबूतरा था, गोबर से लिपा हुआ साफ-सुथरा। उसके नीचे किवाड़ के पास एक अँगीठी थी, जा थोड़ा थोड़ा धुआँ उठाकर तमाखू पीने वालों को निरन्तर अपनी याद दिलाती रहती थी। दाईं ओर अँधेरे में दो तीन खाटें दीवार से टिकी थीं। एक जगह मिट्टी के दो नये घड़े पानी से भरे हुए रक्खे थे। इसके अतिरिक्त वहाँ और कुछ सामान न था। यह कमरा मानों एक अनन्यभक्त के हृदय की भाँति पहले से ही सब विषयों का त्याग करके चुपचाप किसी इष्ट अतिथि की प्रतीक्षा कर रहा था।

माते ने आकर शिष्ट वचनों से सत्कार किया। चबूतरे पर बिस्तर लगाते देख कर खाट बिछा देने के लिए वे बहुत आग्रह करने लगे। जान पड़ता है, वहाँ की सब खाटें हमारे वर्त्तमान वर्णाश्रम धर्म में ही दीक्षित थीं। उन पर शरीर के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को ही आदर के साथ स्थान मिल सकता था, शूद्र पैरों को उनकी पवित्र सीमा के बाहर

रहने की आज्ञा थी। किसी तरह उनसे बचकर मैंने चबूतरे को ही अपनाया।

माते से रामलाल के विषय में पूछने पर मालूम हुआ कि इस गाँव में ऐसा कौन है जो उसे नहीं जानता। झगड़ालू आदमी है, कुछ कुछ पागल-सा। साधू-महात्मा को दण्डवत् पालागन नहीं करता, उलटी उनकी हँसी उड़ाता है। नीच लोगों को अच्छा कहता है,—कुछ ऐसा ही!

इस गाँव में उसकी यह पहली प्रशंसा सुनी। इसे मैं प्रशंसा ही कहूँगा। यदि इसके विरुद्ध कुछ सुनता तो उससे मुझे दुःख ही होता। मुझे जान पड़ा कि उसने अपने गाँव की बात रख ली है। अकेला उसका गाँव ही ऐसा नहीं है, जहाँ उसे अनादर, अवज्ञा और पीड़ा ही पीड़ा मिली। जहाँ भी वह पहुँच जायगा, वह इनका साथ नहीं छोड़ सकता। सच्चे तपस्वी को क्या कुटी और क्या राज-भवन; सभी जगह भस्म-लेप, कोपीन और कमण्डलु ही उसके अंगी हैं।

अपने साथियों को विवाह के झमेले में छोड़कर मैं रामलाल से मिलने के लिए निकला। माते ने अपने घर का एक लड़का मेरे साथ कर देना चाहा। रामलाल के प्रति उनकी जो धारणा थी, इस समय वह मुझे खटकी। इनके

प्रतिनिधि को साथ लेकर मुझे उसके यहाँ जाना अच्छा नहीं जान पड़ा। 'आवश्यकता नहीं' कह कर मैं चल दिया। सोचा, इस बस्ती में रामलाल के लिए कुछ इधर-उधर भटक कर ही मैं उसकी थोड़ी-सी मानसी-प्रतिष्ठा कर लूँ।

घर से निकलते ही सड़क पर एक सूरदास दिखाई दिये। माते ने उन्हें पुकार कर कहा—सूरदास, कछियाने की ओर जा रहे हो?

सूरदास ने लकड़ी टेक कर खड़े होते हुए कहा—कौन,—माते कक्का हैं? हाँ, उसी ओर जा रहा हूँ कक्का। आवें, है कुछ पान-तमाखू का डौल? कक्का, अब तुम अपना विवाह कर लो; दो चार दिन साधु-सन्तों का मुहँ मीठा हो जायगा।

माते के मुहँ पर प्रसन्नता की हँसी दिखाई दी। बोले—तुम तो ऐसे ही हो सूरदास! सुनो, ये बाबू साब, रमलला के यहाँ जाना चाहते हैं। तुम इन्हें साथ लिये जाओ, उसका घर बता देना।

सूरदास ने मेरी ओर मुहँ फेरा। मैं बाबू साहब हूँ, मानों इतना जानकर ही वह मेरे विषय में सब कुछ जान गया। चिर परिचित की भाँति हँसता हुआ बोला—

राम राम बाबू साब ! चलो मैं रामलाल के यहाँ पहुँचा दूँ। अन्धेराम के पीछे चलोगे, कहीं किसी खाई-खन्दक में न गिर पड़ियो।

मैंने कहा—एक खोटे आदमी से मिलने के लिए जा रहा हूँ, इसे खाई-खन्दक में ही गिरना समझो सूरदास।

मेरे साथ चलते चलते वह बोला—रामलाल खोटा आदमी है बाबू साब ! कौन उसे खोटा कहता है ?

माते ने उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, वह मैंने उसे सुनाया। हँस कर बोला—माते तो ऐसा कहेंगे ही। पचपनसाला हो गये, घर में कई बाल-बच्चे हैं, फिर भी नये ब्याह की धुन में हैं। एक दिन रामलाल इसी बात को लेकर इन्हें दस-बीस खरी-खोटी सुना गया। इनसे कोई विवाह की बात कहे तो खुश हो जाते हैं। कोई लूला-लँगड़ा और अपाहिज इनसे एक कौड़ी तो ले ले, और विवाह का सिलसिला चला कर एक बामन देवता ने अभी दो तीन महीने पहले इनसे पचास रुपये झटक लिए। ऐसे आदमियों का धन ऐसे ही अकृत में जाता है। इतने दिन इस गाँव में आते जाते हुए, कभी छदाम की कौड़ी के लिए भी माते कक्का का मन नहीं पसीजा।

"तब तो तुम्हारे माते कक्का बहुत अच्छे आदमी हैं।

ऐसे आदमियों की कृपा से ही लक्ष्मी देवी संसार में टिकी हुई हैं; सब उड़ाऊ-खाऊ होते तो कभी की अपने वैकुण्ठ-लोक में चली गई होतीं। अच्छा सूरदास, तुम समझते हो, रामलाल ऐसा बुरा आदमी नहीं है ?"

"मो से जैसों के लिए तो बुरा ही है। मेरी पूछो तो दो चार महीने में जब जरूरत आ पड़ती है, उससे कुछ न कुछ ले ही गिरता हूँ। रामलाल से यह सब कह न देना बाबू साब, मेरी और उसकी खटपट हो जायगी। बाबू लोगों में आपस की खटपट करा देने के गुन बहुत होते हैं! पिछली बार जब मैं तिरबेनी का परब लेने जा रहा था, बिना माँगे-जाँचे रामलाल ने चुपके-से मेरे हाथ पर एक चवन्नी रख दी। टटोल कर मैंने कहा—भैया, यह तो चवन्नी है, आज के भोजन के लिए दो पैसे बहुत हैं, रेल में कोई बुरा हाकिम मिल गया तो किराये में छीन लेगा। परन्तु उसने मेरी बात न सुनी और चुपचाप दूसरी जगह चला गया।"

मुझे आश्चर्य हुआ कि यह अन्धा आदमी कैसे त्रिवेणी तक पहुँच जाता है। पूछा—रुपया-पैसा लिये बिना तुम कैसे तीर्थ हो आते हो ? कम्पनी को किराया न देकर रेल में चढ़ना एक तरह की चोरी है। यह काम करते हुए तुम्हें बुरा नहीं लगता ?

वह बोला—इस चोरी से किसीका अन्न छिनता तो मुझे जरूर बुरा लगता बाबू साब। किसीको कुछ तकलीफ नहीं देता, बेञ्च के नीचे एक तरफ बैठा चला जाता हूँ। फिर भी यह चोरी तो है ही, क्योंकि हम गरीब हैं। रेल वाले पूरा किराया लेकर पच्चीस की जगह पचास सवारियाँ एक डिब्बे में लाद ले जाते हैं, इसे कोई चोरी नहीं कहता। यह सब तो भलमनसाहत है बाबू साब? रेल वाले बड़े आदमी हैं, इसलिए आप उन्हें भूलकर भी कुछ नहीं कह सकते। जितने बुरे काम हैं, हम गरीब लोगों के हिस्से में ही पड़े हैं। आप एक एक दिन में एक एक रुपये के पान-तमाखू उड़ा दें, आपको कोई कुछ न कहेगा। और कभी हमें किसी भलेमानस से दो चार आने मिल जाँय और हम हलवाई के यहाँ से तेल की जगह घी की पूड़ी खरीद कर खा लें तो लोग उँगली उठाने लगते हैं; कहते हैं, यह अन्धा बड़ा ऐबी है, दूसरों से पैसे ठगकर मौज करता है; ऐसे पापी की आँखें फूटनी ही चाहिए! आपने यहाँ के इसटेसन के छोटे बाबू को देखा है?

मैंने कहा—उतरा तो मैं रात को ही गाड़ी से था, मेरा टिकट सम्भवतः उन्हींने लिया होगा; परन्तु मुझे उनकी याद नहीं है। क्यों क्या बात है?

वह बोला—आप छोटे बाबू की याद क्यों रखने लगे। कोई टोप वाला होता तो उसकी याद रहती। यहाँ के उन बाबू को रात भर जाग कर इसटेसन का काम सँभालना पड़ता है। दिन में सोने के लिए छुट्टी रहती है; परन्तु दिनकी नींद तो चाट है। बारहों महीने चाट ही चाट खाकर क्या कोई आदमी आहार का काम चला सकता है? सात आठ महीने में ही बाबू साब की हालत कुछ की कुछ हो गई है। इनके पहले के दो ऐसे ही बाबुओं को मैं और जानता हूँ, जिन्हें रात को काम करना पड़ता था। बेचारों को राजच्छमा हो गई और मर गये। ज्यादा काम होने की बात कहें तो नालायक कह कर निकाल दिये जायँ। बीमार हो जाना भी नालायकी है, इसलिए जब तक बनता है उसे छिपाये रहते हैं; इसी तरह करते करते एक दिन चल बसना पड़ता है। मुझे इन बाबू साब की भी कुशल नहीं दिखाई देती। न जानें ऐसे कितने आदमी रेल के इस हत्यारे काम में मरते रहते हैं; फिर भी आप उसे हत्यारी नहीं कह सकते। क्योंकि उसके चलाने वाले बड़े आदमी हैं। वे जो करें सो सब साहूकारी और कानून है और हम गरीबों की कुछ न पूछिए; हम जो कुछ करें वही चोरी, बदमाशी और पाप है। थानेदार, तहसीलदार, माते, जमींदार बात बात में मार पीट कर देते हैं, गाली-

गलौज करते हैं; फिर भी ये सब भले आदमी हैं! ठीक है न बाबू साब? रामलाल ने उस दिन गाली देने पर एक कानिस्टबिल को धक्का देकर गिरा दिया, इस पर गाँव भर में उसकी बुराई हुई और बड़ी मुश्किल से उसका चालान होते होते बचा। गरीब हैं, इसीसे ऐसी बात है, नहीं तो—ठीक है बाबू साब, आज कल का समय ही ऐसा है!

मैंने सोचा, इस अशिक्षित अन्धे ने इस तरह के विचार कहाँ पाये? अवश्य ही यह भी किसी नामधारी भले आदमी से सताया जा चुका है। मैंने कहा—सच है, आज कल का समय ही ऐसा है। तुम्हारे इस विचार से मुझे प्रसन्नता हुई कि किराया दिये विना रेल में यात्रा करते समय तुम्हें यह ध्यान रहता है कि हमारे इस काम से किसीकी रोटी तो नहीं छिनती। घर तुम्हारा कहाँ है सूरदास?

वह बोला—यह जानकर क्या करोगे बाबू साब? घर, जमीन, रुपया-पैसा जब था, तब था; अब तो कुछ नहीं है। अब मैं जहाँ पहुँच जाऊँ, वहीं मेरा घर है।

"घर के कोई लोग हैं!"

"होंगे, क्या मालूम"—कह कर सूरदास ने एक लम्बी साँस ली। मैंने बातचीत का प्रसंग बदल देना उचित समझा।

कहा—सूरदास, तुम तो इस तरह चल रहे हो, जैसे तुम्हें सब कुछ दिखाई देता है। आँखें रखते हुए भी मैं एक पत्थर से टकरा गया और तुम बातचीत भी करते जाते हो, चलते भी जाते हो और राह चलते आदमियों से बच कर उनसे 'राम राम सीताराम' करना भी नहीं भूलते। अच्छा, यह गाँव तुम्हारे लिए परिचित हो सकता है, परन्तु तीर्थ करने जाते हो, तब तो अड़चन पड़ती होगी?

"अड़चन कुछ नहीं पड़ती बाबू साब, सब कहीं काम चल जाता है। आँखें चली जाने पर ही मैंने जाना है कि भगवान ने आदमी को ये दिखाई देने वाली ही दो आँखें नहीं दीं; हाथ, पैर, कान और मन सब जगह उसने आँखें ही आँखें लगा दी हैं; ऐसा दयालु है वह! अपनी मूर्खता से ही हम इन सबको नहीं समझ पाते।"

"ठीक है।"

"जब मेरे आँखें थीं, तब मुझे एक भी भला आदमी दिखाई नहीं देता था। अब जगह-जगह मिल जाते हैं। यहाँ के छोटे बाबू ने गार्ड से कह कर मुझे प्रागराज तक के लिए रेल में चढ़ा दिया था। लौटते समय कोई बाबू जान-पहचान का नहीं था। राम का नाम लेकर मैं गाड़ी पर सवार हो गया। बीच में कहीं एक टिकट-कलट्टर ने आकर

कहा—सूरदास, टिकट बताओ। मैंने कहा, हमारे पास टिकट नहीं है, बाबू साब। कहने लगे, हम नहीं जानते अगले इसटेसन पर उतार देंगे। मैंने कहा,—अच्छी बात है, आध सेर आटे का इन्तजाम और कर देना। हमें क्या, टिक्कड़ लगाकर वहीं राम का नाम लेंगे। वे बोले, अच्छे हो सूरदास, विना टिकट के तुम्हें चले जाने दें और हमीं तुम्हारे टिक्कड़ों का इन्तजाम करें! थोड़ी देर बाद मैंने कहा, तो बाबू साब, एक बीड़ी तो अभी दो; बड़ी देर से तमाखू नहीं पी। बोले, हमारे पास बीड़ी नहीं है, सरगट्ट है; दो पैसे की एक। हमें क्या, बीड़ी नहीं तो सरगट्ट ही सही। बाबू साब ने सरगट्ट पिलाई, सेर भर आटे का इन्तजाम किया और यहाँ के इसटेशन तक पहुँचा दिया। अब कहो, है न भगवान् की कृपा?

हम लोग रामलाल के घर तक पहुँच गये।

कच्ची खपरैल थी। गोबर-मिट्टी लगाकर टीप-टाप के खिजाब से यह जीर्ण घर काम-चलाऊ नया कर लिया गया था। बगल में एक दूसरी कोठरी थी,—सार जैसी जान पड़ती थी। ऊपर खपरों पर कद्दू या लौकी की बेल छितरी हुई थी। सार में तीन-चार ढोर-बछेरुओं के बाँधे जाने के चिन्ह थे, उस समय चरने के लिए हार में, या काम पर गये होंगे। सामने वाले घर के बाहर चबूतरे पर बैठकर नीचे पैर लटकाये रामलाल का बाप मोहन माते ढेरे पर सन कात रहा था। बहुत दिन बाद देखा, बहुत बूढ़ा जान पड़ने लगा था; दृष्टि शक्ति भी मन्द पड़ गई थी। देख कर मेरे मन में अपने आप करुणा उत्पन्न हो उठी। सूरदास ने आवाज दी—रामलाल भैया।

"सूरदास हैं, आओ रमला दूसरे गाँव गया है।"

"बप्पा, सुनो, ये बाबू साब रामलाल भैया के पास आये हैं। मैं काम से जा रहा हूँ।"

बूढ़ा उठकर खड़ा हो गया और मेरी ओर देखने लगा। मैंने कहा—बप्पा, मुझे पहचाना नहीं? मैं हूँ हरिनाथ।

आज पहली बार मैंने इस वृद्ध को बप्पा कहा। आस-पास परिचितों में कोई नहीं था, इसलिए लज्जा करने की कोई बात न थी। संसार में निरन्तर चिर परिचितों का निकट रहना भी बहुत बड़ी बाधा है।

"आओ भैया, आओ; बड़ी कृपा की"—कह कर वृद्ध आनन्द से अधीर हो उठा। डगमग पैर रखता हुआ झट भीतर जाकर मूँज से बुनी हुई एक पीढ़ी उठा लाया। उस पर मुझे बिठाकर वह पास ही नीचे बैठ गया।

सूरदास ने जाते जाते मेरा नाम सुना। लौट कर बोला—तुम 'हरी भैया' हो, मैं अन्धा क्या जानूँ? बाबू साब, बाबू साब कह कर मैंने तुमसे न जानें क्या क्या कह डाला। भैया, माफ करो। रामलाल से तुम्हारी कितनी ही बातें सुनी हैं, तुम्हारी बात करते-

करते उसका गला भर आता है । उस दिन कानिस्टबिल साब से लड़ बैठने की बात पर जब उससे सब लोग बहुत नाराज हुए, तब उसने दुखी होकर कहा था,—सूरदास, ये गँवार इन बातों में क्या जानें, हरी भैया होते तो आज वे मेरी पीठ ठोकते ।

बूढ़े से बातचीत करके रामलाल के विषय में बहुत-सी नई बातें मालूम हुईं । बहुत कहे-सुने जाने पर भी उसने फिर से विवाह नहीं किया । उसके हृदय में विद्रोह का एक ऐसा ज्वालामुखी है, जो अपने आपके अंश को भी, छिन्न-विछिन्न करके बीच बीच में भड़क उठता है । किराये पर एक बैलगाड़ी चलाता है, उसकी आय से अपनी श्रेणी में वह एक अच्छा गृहस्थ बन सकता था । परन्तु इस ओर तो उसका ध्यान ही नहीं है । जान-समझ कर ही उसने अपने आपको 'नीच और अभद्र' लोगों में हिला-मिला कर एक कर लिया है । बैलगाड़ी के किराये की आय उसको हथेली के अतिथि घर में बाहर बाहर एक बँधे समय तक ही रह सकती है, आत्मीय-स्वजन की भाँति उसे उसके घर में टिकने का अधिकार नहीं । गहरी निद्रा में बेसुध सोते समय भी अपने मन की जिस अज्ञात चेतना के कारण हम खाट से नीचे नहीं गिरने पाते, उस जैसी ही किसी गूढ़ शक्ति ने इस

अवस्था में भी उसे अपने बाप के खान-पान की सुख-सुविधा से बेसुध नहीं कर दिया है, यही मुझे बहुत मालूम हुआ।

परन्तु मेरा यह सन्तोष बहुत देर तक न टिका। बुरे संग में पड़ कर उसे भंग-चरस का चस्का पड़ गया है। प्रारम्भ से लेकर अब तक वह यही कहता आ रहा है कि मैं इन्हें जब चाहे तब छोड़ दे सकता हूँ, परन्तु छोड़ नहीं सकता। नशा ऐसी ही वस्तु है। नशे के साथ मनुष्य चिरकाल से उस बालक के जैसी क्रीड़ा करता आ रहा है, जो आग की एक छोटी चिनगारी अपनी घास की गंजी में धधका कर उसे तुरन्त बुझा दे सकने का विश्वास रखता है और फिर अपने कार्य के फल-स्वरूप किसी लंकाकाण्ड की पुनरावृत्ति में अपनी भूल समझकर भी कुछ नहीं कर सकता।

मुझे अनुभव हुआ कि मुझसे बचने के लिए ही किसी की बरात में जाने का बहाना करके रामलाल इन दिनों यहाँ से टल गया है; क्योंकि उसे समझना चाहिए था कि यहाँ आने वाली इस बरात में मैं आ सकता हूँ। खेद और पीड़ा के साथ ही मैं उसके यहाँ से लौटा।

अपने साथियों का आनन्द-कौतुक मुझे पीड़ा पहुँचाने लगा। उन्हें छोड़कर घूमने-घामने के लिए मैं फिर अकेला निकल पड़ा।

२२

गाँव के बाहर सड़क किनारे एक कुएँ पर सुस्ताने के लिए चुपचाप बैठा था। इसी बीच में एक सज्जन आकर मेरे पास बैठ गये।

हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए उन्होंने कहा—आप श्यामलाल जी के यहाँ आई हुई बरात में आये हैं ?

बरात में आया हुआ व्यक्ति अपरिचित मनुष्य की आँख से भी नहीं बच सकता। घर में दीवाली और मनुष्य के शरीर में बरात, दोनों वस्तुएँ एक ही हैं। स्वीकार-सूचक 'हाँ' करके मैंने पूछा—आप ?

"मैं यहाँ के मिडिल स्कूल में अध्यापक हूँ।"

हँसने की चेष्टा करके मैंने कहा—भगवान् को धन्यवाद है कि स्कूल के सपरिश्रम कारावास से छूटे हुए

मुझे बहुत दिन हो गये, नहीं तो आपका परिचय पाकर मुझे डर जाना पड़ता।

वे एक दम खुलकर हँसने लगे। कोई अध्यापक नामधारी व्यक्ति सरल बच्चे की-सी हँसी हँस सकता है, यह मैं न जानता था। उन्होंने कहा—नहीं भाई साहब, आप भूलते हैं। हमारे स्कूल में एक ऐसे अध्यापक हैं जिन्हें देखकर आप इस अवस्था में भी डर जायँ। अच्छा आपका नाम—आप ही श्रीहरिनाथजी हैं?

मैंने कहा—पहले आपने यह समझ लिया कि मैं बराती हूँ, फिर आपने मेरा नाम भी बता दिया। आप जैसी असाधारण शक्ति मुझमें होती तो मैं खुफिया पुलिस में जाकर कुछ करके दिखा सकता।

अध्यापक महाशय फिर पहले की भाँति हँस उठे। बोले—ओः यह बात है! आप मुझे खुफिया का आदमी समझ रहे थे। मुझे भी खुफिया का यह रोग बहुत दिनों तक रह चुका है। अब भी है, परन्तु अब इसके फिट ही आते हैं, दिन-रात परेशान नहीं किये रहता। डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चेयरमैन श्री शर्म्माजी की कृपा से मुझे यहाँ के स्कूल में अँगरेजी पढ़ाने के लिए जगह मिल गई है, इसीसे।

उनका यह परिचय पाकर मुझे प्रसन्नता हुई।

मैंने कहा—आगे चल कर कभी ऐसा समय आ सकता है, जब सरकार यह आवश्यक समझे कि प्रत्येक पढ़े-लिखे आदमी को पुलिस के दफ्तर में जाकर मोटरों की भाँति अपनी संख्या और पता मस्तक के ऊपर छपवा लेना चाहिए, अन्यथा वह कहीं आ जा नहीं सकता। ऐसा हो जाने पर किसीके सम्बन्ध में कुछ जान लेना बहुत आसान हो जायगा। परन्तु आपने अभी यह कैसे जान लिया कि मेरा नाम हरिनाथ है?

"आपके सम्बन्ध में रामलाल बहुत चर्चा किया करता है। उसने कहा था कि इस बरात में आप अवश्य आयँगे। मैंने सोचा बरात में होकर भी चुपचाप अकेले बैठने वाले आप ही होंगे।"

मैं सोच रहा था कि जिस ज्ञान के बल से साहित्य-कलाविद् भर्तृहरि ने बिना सींग-पूँछ के मनुष्य में भी साक्षात् पशु को देख लिया है, उसकी सहायता से ही इन्होंने भी मुझमें मेरा नाम देखा होगा। इसलिए यह जानकर कि जैसी साधारण बातों से दूसरे असाहित्यिक दस व्यक्ति पहचाने जाते हैं, उन्हींसे मैं भी पहचाना गया हूँ, मेरे लिए दुःखित होने का कारण यथेष्ट था। परन्तु रामलाल की चर्चा ने मुझमें यह भाव नहीं आने दिया।

उन्होंने बताया कि लगभग दो साल से वे उसे अच्छी तरह जानते हैं। उसके साथ उनका परिचय एक असाधारण प्रसंग पर एकाएक हुआ। इस गाँव में एक अच्छे महाजन हैं, वंशीधर। अच्छे—हाँ, अच्छे ही कहने चाहिए, 'गरल सराहिय मीच' के अनुसार। एक दिन दोपहर के समय अध्यापकजी उनके घर के सामने से कहीं जा रहे थे। देखा,—वंशीधर की स्त्री पागलों की तरह चिल्लाकर कह रही है, 'दौड़ियो, दौड़ियो, रज्जू कुएँ में गिर पड़ा है!' दो पहर का सन्नाटा था; अड़ौसी-पड़ौसी अपने अपने घरों में थे, सड़क पर भी आने जाने वाले न होने के ही बराबर थे। महाजन की स्त्री हुई तो क्या, उस समय वह एक माँ थी। उसके मुहँ पर से परदे का घूँघट अपने आप हट कर दूर हो गया था। घूँघट की उसे आवश्यकता भी न थी। उस समय संसार में उसके पुत्र को छोड़कर कोई था तो एक, केवल एक उसका माँ का हृदय। अपने करुण चीत्कार से वह उसीकी गुहार कर रही थी। तैरना न जानने पर भी उसने अपना कछोटा कस लिया था और वह कुएँ में कूदने की तैयारी ही कर रही थी। अध्यापकजी ने आश्वासन देकर उसे रोका। थोड़ी ही देर में

वहाँ एक खासी भीड़ इकट्ठी हो गई। रस्सा मँगा कर तुरन्त कुएँ में लटकाया गया। परन्तु अब कुएँ में उतरे कौन ? अध्यापकजी तैरना जानते थे, परन्तु बहुत कम। उन्होंने कुछ साहस दिखाना चाहा, परन्तु दिखा न सके। साँप-बिच्छू का डर उन्हें बचपन से ही बहुत था। उस कुएँ की अँधेरी पोल उन्हें एक विशालकाय अजगर की भाँति दिखाई पड़ी। वास्तव में उस बच्चे के कुएँ में गिरने की घटना से साँप का ही सम्बन्ध था। उसका एक समवयस्क साथी उसे दिखा रहा था, 'देखो रज्जू, इस कुएँ में एक साँप है, वह देखो, वह तैर रहा है !' रज्जू ज्यों ही उसे देखने के लिए कुएँ के घाट पर कुछ और झुका, त्यों ही धम्म-से नीचे जा गिरा। बात ऐसी थी, ऐसे में अब किसी दूसरे के बच्चे को निकालने जाकर, जिसे इतने समय के बीच में मर जाना चाहिए था, अपने आपको मौत के मुहँ में कौन गिराता ? परन्तु नहीं, एक व्यक्ति ऐसा था। सहसा भीड़ को चीरता हुआ रामलाल कुएँ के पास आया और रस्सा पकड़ कर सर्र-से नीचे उतर गया।

बच्चे का उद्धार हो गया। इन सब बातों में आध घण्टे से कम नहीं लगा होगा, फिर भी अध्यापकजी के

यथोचित उपचार से उसमें फिर से श्वास-संचार हो उठा।

कचहरी का अपना सब काम यथाविधि पूरा करके जब साँझ को वंशीधर घर लौटा, तब उसने रामलाल को बुलाया। अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करके पचास हजार का लेन-देन करने वाले उस व्यक्ति ने उसको एक रुपया भेट में दिया। बहुत आश्चर्य करने की बात नहीं है। वह रुपया कलदार नहीं, रियासती सिक्के का था, जिसका वर्तमान मूल्य सात आने पैसे से अधिक नहीं। किसीको यों ही कुछ देने के लिए यह सिक्का विधाता की एक अपूर्व देन है; देने पड़ते हैं सात आने और नाम होता है सोलह आने का। भारतीयों को कुछ देते समय कदाचित् इसी रियासती सिक्के का व्यवहार ब्रिटिश सरकार भी करती है। इसलिए इस सम्बन्ध में वंशीधर को अधिक दोष नहीं दिया जा सकता। परन्तु बात है रामलाल की। उसने वह रुपया लेकर दूर फेक दिया। बोला—मैंने रुपये के लोभ से अपने को कुएँ में नहीं ढकेला था। रज्जू जीता-जागता कुएँ में से निकल आया इससे अधिक मैं और कुछ नहीं चाहता। किसीको कुछ देना ही है तो उस हरपा चमार को दो, जिसे दस-बीस ही रुपये के मूल में, ब्याज पर ब्याज जोड़ कर परसों ही तुमने घर-बार से बेदखल

कर दिया है और जिसके पास अब विष खाने के लिए भी पैसा नहीं है। इस रुपये से उसके घर भर के खाने को अफीम आ जायगी। मैं जाता हूँ, लेने-देने की बात को लेकर अब मुझे कभी मत बुलाना।

सबने उसे बहुत धिक्कारा। नीच आदमी है, इसीसे एक मामूली बात में ही अपने को बहुत कुछ समझने लगा है। कलिकाल में यह न होगा तो और क्या होगा।

नीच आदमी!—अध्यापकजी की आँखें क्रोध से जलने लगीं। वे कहने लगे—धिक्कार है हमारी इस समाज-व्यवस्था को, जो रामलाल जैसे आदमी को भी नीच कह सकती है! मैंने अपनी आँखों देखा, तिलक-छापाधारी ऊँची जाति के लोग उस कुएँ में झाँककर देखने में भी डर रहे थे। ऐसे स्वार्थी लोग ही हमारे समाज में सब कुछ हैं, जिनमें न शरीर का बल है न आत्मा का। कहा यह गया कि उन सब द्विज-देवताओं की कृपा से ही वह बच्चा इस प्राण-संकट से बच गया। इसके उपलक्ष में बंशीधर जैसे आदमी ने भी भोज और दान-दक्षिणा में लगभग पचास रुपये खर्च कर दिये, उसी तरह, जिस तरह हमारे राजा-महाराजा सार्वजनिक हित में लगाये जाने वाले रुपये को बड़े साहबों के स्वागत और धूम-धाम में, एक ही

दिन में लाखों की संख्या में फूक देते हैं। हम लोग विदेशियों की बेड़ी में जकड़े हुए हैं, इस बात का अनुभव हमारे शिक्षित-समुदाय को कुछ कुछ होने लगा है। परन्तु हमारे सारे शरीर में इससे भी एक बहुत बड़ी बेड़ी पड़ी हुई है, उसकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं है। वह बेड़ी है, जन्मगत या वर्णगत उच्चता के सम्बन्ध में हमारा अन्ध-विश्वास। वर्ण की श्रेष्ठता ही हमारे लिए सब कुछ है, उसके सामने सच्ची मनुष्यता का मूल्य हमारी दृष्टि में कुछ नहीं। जब तक हमारा यह अन्ध-संस्कार दूर न होगा, तब तक हममें मनुष्यता का विकास नहीं हो सकता।

मैंने कहा—अध्यापकजी, इसके लिए भी प्रयत्न तो हो रहा है। परन्तु किसी भी ऐसे प्रयत्न को सच्ची सफलता स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने पर ही प्राप्त हो सकती है।

"स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने पर ही ?—" अध्यापकजी के मुँह पर आवेश की एक उज्वल आभा फूट पड़ी। वे कहने लगे—यह धारणा भ्रान्त है। समाज में सबके ऊपर मनुष्यता की प्रतिष्ठा कर लेने पर ही हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। यदि किसी दाव-पेंच के बल से किसी तरह हमें स्वतन्त्रता मिल भी गई तो हम उसे दो घड़ी के लिए भी

स्थिर न रख सकेंगे। आज के दिन हमारे शरीर में सैनिकता का आवेश पूरे वेग के साथ उमड़ पड़ा है। हम कहने लगे हैं, 'समाज-संस्कार बुढ़ियों का काम है; हम सैनिक हैं, हमारे लिए तो लड़ाई चाहिए, लड़ाई!' यह वीर-वाणी सुनकर हम आनन्द से पुलकित हो उठते हैं और समझने लगते हैं, बस अब हमारे उद्धार में देर नहीं। परन्तु यह सोचने का भी कभी हमने कष्ट उठाया है कि हममें सैनिकता का अभाव रहा कब है? प्रतापसिंह, शिवाजी, छत्रसाल, गोविन्दसिंह, बन्दा बैरागी, रणजीतसिंह और लक्ष्मीबाई,—क्या ये सब साधारण सैनिक थे? प्रत्येक युग में हमारे बीच एक से एक बड़े सैनिक होते रहे हैं। परन्तु बार बार स्वतन्त्रता का छोर पकड़ कर भी हम उसे रख नहीं सके। इसका कारण यही है कि हम स्वतन्त्रता को न देख कर जाति-पाँति को देखते हैं। राष्ट्रपति के निर्वाचन का प्रश्न यदि आज हमारे सामने आ जाय तो मनुष्य को न देख कर हम अपने अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को ही देखने लगेंगे। शूद्र की चर्चा ही क्या—वह तो हमारी दृष्टि में मनुष्यत्व की सीमा के बाहर है। जाति-पाँति का यह अभिशाप हमारे स्वतन्त्रता के युद्ध में वह भारतीय हाथी है, जिसने बार बार अपने ही दल का विध्वंस किया है। यदि हम सच्चे सैनिक हैं तो सबसे

पहले हमें उसीको जीतना होगा।

मैंने कहा—परन्तु आप बापू की ओर क्यों नहीं देखना चाहते; उनके सम्बन्ध में तो कोई जाति-पाँति का प्रश्न नहीं उठाता?

उन्होंने कहा—गाँधीजी को बात न कहिए। अपने काम के लिए आप सर्वत्र और सदैव उन्हें नहीं पा सकते। हमने न जानें कितनी शताब्दियों में एक मात्र अकेला ही उनको पाया है और यह भी नहीं कहा जा सकता कि कितने युगों के बाद हम उन्हें फिर पा सकेंगे। परन्तु नहीं, आप उन्हींकी बात लीजिए। हमारे अहम्मन्य लोग उन पर भी घातक प्रहार करने से नहीं चूके। अब कहिए?

मैं चुप रह गया। उनको बात का कोई तर्क-संगत उत्तर मैं न सोच सका। वे फिर कहने लगे—इन बातों की ओर पहले मेरा भी ध्यान न था। रामलाल के निकट संसर्ग में आने पर ही पहले पहल ये बातें मेरे ध्यान में आईं। ऐसा साहसी और चरित्रवान व्यक्ति इसके पहले मैंने कभी नहीं देखा। उसके सम्बन्ध में आपसे कुछ कहना व्यर्थ है, आप उसे मुझसे अधिक ही जानते होंगे। वह जिस बात को उचित समझता है, उसके लिए आग में भी कूद सकता है। जहाँ एक ओर वह इतना कठोर है, वहीं दूसरी ओर उतना

हो कोमल ! संसार में जितनी भी स्त्रियाँ हैं या तो उसकी बहनें हैं या माताएँ। मेरी छः सात बरस की एक लड़की है, उसे खिलाने के लिए मेरे यहाँ वह प्रायः आता रहता है। उसका नाम है शोभा, परन्तु उसे वह कहता है, मुन्नी। प्रत्येक लड़की को वह भूल से मुन्नी ही कह बैठता है। वह उसके लिए नीचे जमीन पर घोड़ा बनकर घूमता है और पेड़ की डाल के सबसे ऊपर का फल-फूल तोड़ लाने के लिए बन्दर बनते भी उसे देर नहीं लगती। ऐसा व्यक्ति उपयुक्त शिक्षा पाकर कुछ दूर तक अपनी दृष्टि दौड़ा सकता तो कौन कह सकता है, वह हमारे कितने अभिमान और कितने गौरव की वस्तु होता। परन्तु आज वह हमारे समाज के किसी ऊँची जाति वाले निकृष्टतम व्यक्ति के निकट भी हेय है। ऊँची कही जाने वाली जाति में समय समय पर अनेक महापुरुष उत्पन्न होते रहे हैं, तो मैं पूछता हूँ कि उन्नति का उचित अवसर पाने पर, क्या नीची कही जाने वाली जाति में भी वे उत्पन्न नहीं हो सकते? मैं कहता हूँ, अवश्य हो सकते हैं। बाहर दूसरी जगह आज जो व्यक्ति लकड़ी चीरने वाला साधारण बढ़ई है, दूसरे ही दिन उन्नति का पथ खुला पाकर वहाँ का राष्ट्रपति हो जाता है और दासता जैसी पाशविक व्याधि का उच्छेद करके संसार के

सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में एक श्रद्धा-पूर्ण स्थान अधिकृत कर लेता है। अपने इन उपेक्षितों, हीनों और अछूतों को हमें भी मनुष्य की दृष्टि से देखना चाहिए। भगवान ने इन्हें भी मनुष्य ही बनाया है। यदि मनुष्यत्व खोकर आज ये पतित और भ्रष्ट हो रहे हैं तो इसके पापभागी हमीं है और हमें समझ लेना चाहिए, इसका दुष्परिणाम हमें चिरकाल तक भोगना पड़ेगा।

मैं बरात के डेरे लौट आया; फिर भी बड़ी देर तक अध्यापकजी की बातें मेरे मस्तक में गूँजती रहीं।

दूसरे-तीसरे दिन भी रामलाल बाहर से लौट कर न आया। मैं उससे मिल न सका और मुझे बरात के साथ घर आजाना पड़ा।

इसके छः सात महीने बाद अचानक एक दिन यह समाचार सुना कि पुलिस ने रामलाल को एक भयंकर अपराध में पकड़ा है। सुनकर मैं वैसा ही रह गया। परन्तु हाय ! मेरे पाठकों को इतना अवकाश कहाँ कि क्षण भर के लिए भी वे मेरे साथ चुपचाप बैठे रह सकें।

२३

बाद में मैंने सब सुना—

रामलाल के जी में बेचैनी की उस प्रकार की एक कुत्सित दुर्गन्ध थी, जो अपनी सीमा के बाहर भी किसीकी नाक में स्मृति के साथ बसी रहती है। उससे पिन्ड छुड़ाना उसके लिए असम्भव हो गया

उसने सोचा था, इतनी दूर जाकर गुलाबसिंह की बात अनायास ही उसे भूल जायगी। अब उसने देखा, यह व्यक्ति तो उसे प्रत्येक रुपये-पैसे वाले के भीतर दिखाई देने लगा है। वह ऐसे लोगों से दूर रहने का प्रयत्न करने लगा। रुपया-पैसा उसके लिए महावट का वह पानी हो उठा, जिसे जाड़े से ठिठुरा हुआ मनुष्य अपने खेत के लिए चाहता तो है, परन्तु उस चाहने में अपने हृदय का प्यार नहीं मिला सकता।

फिर भी उसने अनुभव किया कि उसका यह मानसिक रोग धीरे धीरे शान्त हो रहा है। शान्त हो भी जाता, यदि उसका सम्बन्ध अकेले उसीके साथ होता। परन्तु रोग का स्वभाव ही ऐसा है कि वह किसीके मन और शरीर को ही अपने अधिकार में करके सन्तुष्ट नहीं हो जाता, वरन् आस-पास के वातावरण में हिल मिल कर निरन्तर बाहर से भी आक्रमण करता रहता है।

जिन छोटे लोगों में उसने अपना स्थान बना लिया था, एक दिन उन्हींमें से एक ने कहा—रामलाल भैया, आज यहाँ बाजार में भोजपुरा का माते आया था। क्या नाम है उसका—हाँ, गुलाबसिंह।

दूसरा—अरे उसने यहीं दो कोस दूर दलीपपुर में जमींदारी का कुछ हिस्सा खरीदा है।

तीसरा—दलीपपुर में ? चलो रामलाल भैया, किसी दिन चलकर बेईमान की मरम्मत कर आवें।

दूसरा—मरम्मत कर आवें—बड़ा सपूत तो है ! मरम्मत अपने उस बहनोई की न की—नामर्द कहीं का !

चरस की चिलम के साथ आपस में उन सबका गाली-गलौज चलने लगा। गाली-गलौज और गन्दी गन्दी बातें उनके आनन्द-कौतुक का ही अंग थीं। रामलाल सुन-सा

होकर मन ही मन कहने लगा—मैं इतनी दूर आया, फिर भी इसने मेरा पिन्ड न छोड़ा। इसकी मौत ही तो इसे मेरे पीछे यहाँ नहीं खींच लाई? एक दम कुछ न कुछ कर बैठने के लिए उसका मन उसे झकझोरने लगा। पास के एक आदमी के हाथ से चिलम छीन कर एक ही खींच में उसने उसके ऊपर आग की लौ उठा दी।

अच्छा ही हुआ कि बिना ही अभ्यास के पहली ही बार में उसने इतनी चरस पी ली। पीने के साथ ही उसका शरीर अवश हो उठा। उस रात उन्हीं साथियों द्वारा वह अपने घर पहुँचाया गया।

दूसरे दिन दिन भर उसके शरीर में एक तरह की निर्बलता बनी रही। उस दिन बाजार में किराये पर माल ढोने के लिए उसने अपनी बैलगाड़ी भी नहीं जोती। अँधेरे घर में चुपचाप लेटा लेटा निरन्तर वह अपने मन में अनेक संकल्प-विकल्प करता रहा।

साँझ के समय चुपचाप उठकर अकेला घूमने के लिए एक ओर हार में निकल गया। वह चला जा रहा था, परन्तु जान पड़ता था कि मानों स्वप्न की अवस्था में ही वह अपने को ढकेले लिये जा रहा है।

अँधेरा होने पर जब उसकी आँखें पहले की तरह काम

करने से इनकार करने लगीं, तब एकाएक चौंक कर उसने चारों ओर दृष्टि डाली। उसे मालूम हुआ कि वह गाँव के बाहर डेढ़ कोस दूर आगया है। थोड़े ही आगे संकट-मोचन का वह मन्दिर है, जिसमें महावीरजी की प्रत्यक्ष कला होने के विषय में वह अनेक बातें सुन चुका है। उसे जान पड़ा कि मानों अनजान में कोई गूढ़ शक्ति ही अपने बल से उसे यहाँ तक खींच लाई है। समय असमय का विचार छोड़ कर मन्दिर में वह आगे बढ़ गया।

अँधेरे में उसे महावीरजी की मूर्त्ति दिखाई नहीं दी। दिखाई नहीं दी तो क्या हुआ, उसका देवता तो दिखाई देने वाले अँधेरे में भी एक रूप होकर हिला-मिला हुआ था। मूर्ति के नीचे साष्टांग गिर कर वह कातर भाव से रोने लगा।

मेरी माँ के मुहँ से उसने रामचरितमानस की कथा बीसियों बार सुनी थी। राम की अपेक्षा उसका मन हनूमान के पास अधिक टिकता था। अपने उन्हीं इष्टदेव को अपने सामने प्रत्यक्ष अनुभव करके वह जोर-जोर से कहने लगा—महावीर स्वामी मुझे उबारो; मैं कोई बुरा काम न कर बैठूँ, मुझे उबारो!

एकाएक उसके मन में दृढ़ता आ गई। घुटनों के

बल बैठकर नीचे मत्था टेकते हुए उसने शपथ ली—हे महा-वीर महाराज, मैं तुम्हारे सामने सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि गुलाबसिंह माते और रनियाँ के ऊपर मैं हाथ न उठाऊँगा। इनका जो कुछ करना हो तुम्हीं करो। मैं तो तुम्हारी सरन आकर बच गया, बच गया!

सचमुच अपने हृद्गत देवता की प्रेरणा से उस समय तो वह बच ही गया, उसके साथ एक दूसरे व्यक्ति की विपत्ति भी टल गई।

रामलाल ने जहाँ एक ओर अपने मन को प्रतिज्ञा के इस बन्धन में कठोरता के साथ जकड़ लिया, वहीं दूसरी ओर उसे उसके ऊपर अपना शासन कुछ ढीला भी कर देना पड़ा। कठोर से कठोर सेनापति भी अपनी सेना के प्रति कुछ कुछ ऐसा ही व्यवहार करता है। थोड़े दिनों में ही उसके साथियों ने देखा कि गाँजे और चरस की चिलमें फूकने में भी इसके जोड़ का आदमी मिल सकना कठिन है।

इसी समय वंशीधर के बच्चे को कुएं से निकालने जाकर उसने उन अध्यापक महोदय का परिचय पाया। अध्यापकजी के संसर्ग में आकर उसे बड़ी शान्ति मिली। उनकी बच्ची को देखकर उसे मेरी बहिन की याद आ गई। उसके हृदय का रुका हुआ स्नेह और प्रेम एक बार फिर

उमड़ पड़ा। उसने सोचा, इस मुन्नी को खिलाकर मेरा हृदय बहुत कुछ पवित्र हो जायगा। परन्तु चरस और गाँजा पीकर तो अध्यापकजी के यहाँ नहीं जाया जा सकता। मुझे अपनी आदत ठीक करनी होगी।

एक दिन अपनी नई मुन्नी को कहानी सुनाकर रात के नौ दस बजे अँधेरे में वह अपने घर लौटा। उसने देखा, उसके बन्द घर के बाहर एक स्त्री सिर झुकाये बैठी है। उसको आहट पाकर वह उठ कर खड़ी हो गई। रामलाल ने पूछा—कौन है?

उसने दबे स्वर में कहा—रनियाँ।

रनियाँ! यह मेरे यहाँ क्यों आई? उसे धकिया कर तुरन्त अपने सामने से भगा देने के लिए उसका पित्त भड़क उठा। परन्तु फिर भी अपने को संयत करके उसने कहा—यहाँ क्यों आई? मैं तो गुलाबसिंह नहीं हूँ।

सिर नीचा किये हुए उसने कहा—नहीं, मैं तुम्हारे ही पास आई हूँ।

"उसे कोई दूसरी लड़की मिल गई होगी। तुझे निकाल दिया क्या?"

उसने कोई उत्तर न दिया, चुपचाप वहीं खड़ी रही। रामलाल एकाएक कर्कश स्वर में बोल उठा—यहाँ मेरे

सामने से हट जा, नहीं तो मुझे तेरे ऊपर हाथ उठाना पड़ेगा। एक गुलाबसिंह ने दुतकार दिया तो जा बाजार में चली जा, वहाँ एक की जगह दस मिल जायँगे।

अपनी जगह खड़ी खड़ी वह कहने लगी—महावीरजी की सौगन्ध खाती हूँ, अब की बार मैं तुम्हारी बात मानकर चलूँगी। वहाँ अब मुझसे रहा नहीं जाता।

रामलाल को एकाएक अपनी प्रतिज्ञा की याद आ गई। उसने शान्त होने की चेष्टा की, परन्तु अपने स्वर की कठोरता दूर न कर सका। बोला—मैं कहता हूँ रानी, तू मेरे सामने से चली जा; अपने घर में मैं अब तुझे नहीं रख सकता।

"तो अब मैं कहाँ जाऊँ? मेरे गहने बेचकर तुम बिरादरी को जरीबाने की पंगत दे देना, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ"—कहकर वह उसके पैरों पर झुकने लगी। रामलाल झट से दो हाथ पीछे हट गया। बोला—लच्छमी, मुझे छू मत। मैं और कुछ नहीं चाहता, तू मेरे सामने से चली जा।

रामलाल ने धक्का देकर घर के किवाड़ खोले और झट से उन्हें बन्द कर उसने भीतर की साँकल चढ़ा दी।

दूसरे दिन जब उसके बाप को यह सब हाल मालूम

हुआ, तब वह इस बात पर उससे बहुत अप्रसन्न हुआ कि उसने बहू को क्यों इस तरह दुतकार दिया। उसे भी अपना वह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। उसने रानी की खोज की, परन्तु कुछ पता न चला कि वह कहाँ चली गई है। उसने सोचा कि यदि वह उसे स्त्री की तरह अपने घर नहीं रखना चाहता था तो उसे किसी भले घर में मजूरी दिला कर तो उसकी सहायता कर सकता था। अपने मन की ग्लानि से अब कहीं उसने आत्मघात कर लिया तो क्या इसका थोड़ा-बहुत पाप मुझे भी नहीं लगेगा? गुलाबसिंह ने उसका चरित्र बिगाड़ कर उसकी आत्मा को मैला किया, तो मैंने भी तो समय पर उसे सहारा देकर ऊपर नहीं उठाया। मनुष्य की जाति की जाति स्त्रियों के प्रति ऐसी ही क्रूर है!

अपने को कोई बहुत बड़ा दण्ड देने की उसकी प्रबल इच्छा हो उठी।

इस पश्चात्ताप की ग्लानि उसके मन से दूर हो रही थी कि एक दिन उन सूरदास ने अपनी बहिन की आत्म-हत्या का समाचार सुना कर उसे पागल-सा कर दिया।

सूरदास ने कहा—रामलाल भैया मैंने तुमसे बिरख-भान की बात कही थी—

"तुम्हारा वही बहनोई न, जिसने तुम्हारा सब कुछ

हड़प कर तुम्हें घर घर का भिखारी बना दिया है ?"

"हाँ वही। उसके बुरे चाल-चलन से ऊब कर मेरी बहिन कुएँ में गिर कर मर गई है। आज गाँव का एक आदमी मिला था, उसीसे मालूम हुआ।"

रामलाल का क्रोध उबल पड़ा। बोला—ऐसे राक्षस का सिर फोड़ देना चाहिए; फिर चाहे इसके लिए मुझे फाँसी के ऊपर ही क्यों न चढ़ना पड़े।

सूरदास के मुँह पर हँसी की एक क्षीण रेखा दिखाई दी। बोला—चलो, अच्छा हुआ; मेरी बहिन ने मर कर उस पापी के हाथ से छुटकारा पा लिया। बेचारी बड़े कष्ट में थी।

हँस कर ही वह इस आघात को सह लेना चाहता था, परन्तु सह न सका। एक दम फूट फूट कर रोने लगा। उसने कहा—रामलाल, क्या कहूँ मेरी यह बहिन कितनी भोली थी, बिलकुल गऊ जैसी, सीधी। कोई कड़ी बात तो उसके मुँह से निकलती ही न थी। वह बहुत छोटी थी, जब माताराम मरीं। इस बिन्नी को मैंने कितने लाड़ से पाला-पोसा था। हाय राम, उसे इस तरह मरना पड़ा !

दिन भर रामलाल के मन में सूरदास का यह करुण-क्रन्दन बरछी की भाँति चुभता रहा। बहिन बेचारी मर गई

और उसका नराधम स्वामी सौ पचास ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देकर फिर मौज करने लगेगा। यह संसार ऐसा ही नोच है!

उसके मुहल्ले में दो एक ऐसे आदमी थे, जिनका डाकुओं से सम्बन्ध था। उनमें से एक के यहाँ अचानक कुछ अधिक खाद्य-सामग्री देखकर उसने अनुमान किया कि आज कहीं धावे की तैयारी है। वह उन लोगों में भी विश्वसनीय था, इसलिए उसे मालूम हो गया कि सूरदास के बहनोई के गाँव में ही आज इस दल का आक्रमण है। गाँजे की झोंक में उस समय वह अपना क्रोध रोकने में असमर्थ हो रहा था। झट से उस दल में जा मिला। उसने कहा—मुझे तुम्हारा धन नहीं चाहिए, बस उस राक्षस की खबर ले लेने दो।

रास्ते में उन लोगों की क्रूरता का परिचय पाकर रामलाल को कुछ चेत हुआ। अपने को धिक्कार देते हुए उसने कहा—यह आज मैं कर क्या रहा हूँ? आज का यह दिन आने के पहले ही मेरे ऊपर गाज क्यों न टूट पड़ी।

कारण-वश उस दिन डाकुओं का वह आक्रमण सफल न हो सका। रामलाल पश्चात्ताप की आग में अपने को जलाता हुआ घर लौट आया। एकाएक उसने अपने

परिचितों से मिलना-जुलना छोड़ दिया और सबसे दूर अकेला रहने लगा। बरात में मेरे आने की सम्भावना थी, इसलिए मुझसे बचने के लिए काम का बहाना करके उन दिनों वह दूसरे गाँव चला गया था।

गिरफ्तार होने के एक दिन पहले उसने अकेले में अध्यापकजी को सब बातें सुनाई। अन्त में बोला—पण्डितजी, पुलिस ने डाकुओं में से कुछ को पकड़ लिया है। मैं जानता हूँ दो एक दिन में मैं भी पकड़ लिया जाऊँगा। यद्यपि मैंने डाकुओं को उनके काम में कोई सहायता नहीं दी, फिर भी मैंने पाप तो किया ही है। पकड़े जाकर ही इसका कुछ प्रायश्चित्त हो सकता है। मैं तैयार बैठा हूँ। मुझे केवल अपने बप्पा का ही सोच है। इस बुढ़ापे में मेरे पकड़े जाने से उन्हें बहुत दुःख होगा। तुम उनको हरी भैया के पास पहुँचा देना, वहाँ उनको कोई तकलीफ न होने पायगी। अभी उन्हें कुछ मालूम नहीं है। तुम भी उन्हें धीरज देना, बस मेरी इतनी ही विनती है।

इसके बाद जब उसके पकड़े-जाने की खबर फैली तब बहुतों ने कहा—इतना हृष्ट-पुष्ट और बलवान था, डाकू न होता तो क्या होता। हम बहुत पहले से

जानते थे कि वह ऐसा आदमी है । बड़ी अच्छी बात हुई कि वह जल्दी ही पकड़ लिया गया; नहीं तो पूरे के पूरे गाँव को लुटवा लेता । सबके घर का राई-रत्ती हाल जानता था, किसी एक को भी न छोड़ता !

२४

अदालत में साल भर तक रामलाल का मुकद्दमा चलता रहा। बार बार मुहलत लेकर पुलिस ने इस नाटक की नेपथ्य-भूमि में गवाहों की 'रिहर्सल' की। उन्हें जो पाठ दिया गया था, उसे दुहराया, तिहराया। जो व्यक्ति अनुपयुक्त और अयोग्य निकले, उनकी जगह दूर दूर से खोज खोज कर दूसरे व्यक्ति लाये गये। अन्त में परिश्रम सार्थक हुआ। अन्य कितने ही लोगों के साथ रामलाल को पाँच साल की कड़ी सजा हो गई।

पुलिस ने प्रमाणित कर दिया कि रमला दस साल से यही काम करता आ रहा है, कई बड़ी बड़ी डकैतियाँ

इसीने की हैं। कई साल से रामसिंह नाम का जो डाकू हाथ नहीं आ रहा था, वह यही है। इसका यह कहना सरासर झूठ है कि मैं केवल एक बार ही इन लोगों के साथ गया था; साथ गया था, फिर भी मैंने किया-कराया कुछ नहीं।—इसने ऐसे ऐसे काम किये हैं—इत्यादि।

मेरे आदरणीय बन्धु वनमाली बाबू ने रामलाल की वकालत जी जान से की। अध्यापकजी के कहने से उनके एक वकील मित्र ने भी इस सम्बन्ध में कुछ उठा नहीं रक्खा। यों दो वकीलों का यह प्रयत्न सर्वथा व्यर्थ नहीं गया। दूसरे अपराधों की चपेट में पड़ कर रामलाल को पाँच की जगह बीस बरस की सजा नहीं हुई, यही क्या कम है। पाँच को देकर बीस के इस लाभ से हमें सन्तुष्ट ही होना चाहिए!

मोहन माते अब तक जी ही रहा था; परन्तु उसका यह जीवन किसी महानदी में बहाये गये उस दीपक के जैसा था, जिसकी शिखा को बुझाकर भी भयंकर तरंगें कुछ देर तक जिसे अपने थपेड़ों पर नचाती ही रहती हैं।

रामलाल को जेल की सजा काटते हुए पाँच महीने भी नहीं बीते थे, इतने में एक दिन समाचार मिला कि वह

भयंकर रूप से बीमार है। मोहन को साथ लेकर उसे देखने के लिए मैं सेन्ट्रल जेल जा पहुँचा।

जेलर महोदय सज्जनता पूर्वक व्यवहार करके हमें जेल के फाटक के भीतर ले गये।

यही है वह जेल जिसका आतंक इतना है! मैं सोचने लगा, लोग इससे इतना डरते क्यों हैं? ऊपर आकाश में वही सूर्य है और यह वायु भी वही है, जिसमें हम श्वास ले रहे हैं। गाँव गाँव में हमारे भाई जो जीवन बिता रहे हैं, उसकी तुलना में यहाँ का जीवन हजार गुना अच्छा है। छोटी छोटी पक्की कोठरियाँ, प्रति दिन विना किसी झंझट के दो दो बार का भोजन, समय पर काम और समय पर विश्राम। न महाजन, न साहूकार, न जमींदार और न पुलिस; सब ओर से पूरी निश्चिन्तता है। बीमार के लिए मुफ्त में डाक्टर, अस्पताल, दवा और परिचारक। इन सबका उपभोग करके मेरे रामलाल को किसी बहुत बड़े घाटे का अनुभव तो न होना चाहिए।

किन्तु हाय! उसका समय तो पूरा हो चुका। जिस समय वहाँ के अस्पताल में हम दोनों उसकी खाट के निकट पहुँचे, उस समय पड़ा पड़ा वह अपने जीवन की अन्तिम साँसें गिन रहा था। न्यूमोनिया के भरपूर आक्रमण ने

उसके दोनों फेफड़े नष्ट कर दिये थे। कष्ट के साथ ही वह साँस ले रहा था। बीच बीच में खाँसी के कारण उसके मुहँ की चेष्टा बिगड़ बिगड़ जाती थी।

उसकी खाट के ऊपर झुक कर मैंने धीरे से कहा—रामलाल!

मुझे देख कर उसकी आँखों से आँसू ढुलक पड़े। बोला—"भैया, बड़े अच्छे आये। बस अब"—ऊपर की ओर हाथ करके उसने अपने शीघ्र चल बसने का संकेत किया। बड़े कष्ट से अपने आँसू रोकते हुए मैंने उसे उसका बूढ़ा बाप दिखाया।

बूढ़ा उससे लिपटता हुआ, टेर देकर बड़े जोर से रो पड़ा। जेलर साहब कुछ दूर एक रोगी की खटिया के पास खड़े उससे कुछ कह रहे थे। अपनी बात को विशेष प्रभुत्व-पूर्ण बनाने के लिए साहबी हिन्दी में बोल उठे—ओ बुड्ढा, इस तरह चीखा चिल्लाया तो तुमको हम यहाँ से निकाल देगा!

जेलर साहब अपने निजी अनुग्रह से ही हमें इस दुर्गम स्थान तक ले आये थे। इसलिए उनकी आज्ञा का पालन आवश्यक था। हाय रे बूढ़े, तेरा यह रोना भी यहाँ तेरी ज्यादती है!

रामलाल कुछ प्रकृतिस्थ-सा जान पड़ा। उसने कहा—बप्पा, मेरे लिए रंज न करियो। भगवान की ऐसी ही मरजी है। आज रात रात तक मेरी सब तकलीफ दूर हो जायगी। हरी भैया तुम्हारी खोज खबर रक्खेंगे। निश्चिन्तता से मर सकूँगा।

"मेरे लाल, मुझे दगा दे गया !"—कहकर वृद्ध फिर पहले की तरह रोने लगा। हाय ! यहाँ की ये पत्थर की दीवारें क्या इस के इस रोदन को सहन कर सकेंगी ?

थोड़ी देर बाद रामलाल ने मुझसे कहा—भैया !

मैं स्टूल पर सिर झुकाये बैठा था। उसके मुंह पर दृष्टि डालकर मैंने पूछा—क्या है भाई ?

वह बोला—भैया, समझदार होकर तुम भी रंज करते हो ? मैं तो आज सब तकलीफों से छूटा जा रहा हूँ।

गालों पर ढुलक कर मेरे आँसू नीचे पत्थर की गच पर गिरने लगे। मैं कुछ न कह सका। उसे सन्तोष दे सकने योग्य मेरे प छ नहीं था।

उसने फिर कहा—भैया घर पर मेरी भौजी, लल्लू और छोटी बिन्नी, सब अच्छी तरह हैं ? और दादा ?

मेरे परिवार के इन नये व्यक्तियों से पाठक परिचित

नहीं हैं, परन्तु दूसरी जगह चले जाने पर भी रामलाल उन्हें जानता था। सिर हिलाकर मैंने बताया कि सब अच्छी तरह हैं।

"लल्लू पाँच साल के हो गये होंगे? अच्छा हाँ,—और छोटी मुन्नी साल सवा साल की?—तब तो खूब हँसती-खेलती होगी।"

मैंने देखा, उसका शरीर आनन्द से पुलकित हो उठा है। वह फिर कहने लगा—भैया, भगवान से मेरी प्रार्थना है कि अपने ही गाँव में मैं झट-से फिर जन्म लूँ; दूसरे जन्म में मैं फिर तुम्हारी ही चाकरी में पहुँचूँ। तुमने मेरे लिए जो कुछ किया उससे मैं उरिन नहीं हो सकता। इस बार मेरी ये भौजी ही माँ बनेंगी। जिस तरह तुम्हारे साथ खेला-कूँदा, उसी तरह लल्लू के साथ खेलूँ-कूदूँगा। बचपन का वह सुख मुझे फिर से तुम्हारे यहाँ मिले, मरते समय आज भगवान् से मैं यही चाहता हूँ।

इतने में ही जेल के भीतर रह सकने का समय पूरा हो गया। रामलाल की खाट से रोते हुए उसके बूढ़े बाप को बल-पूर्वक खींच कर मुझे जेलर के साथ बाहर आ जाना पड़ा।

वहाँ के एक दूसरे कर्मचारी ने जेलर से पूछा—क्यों

वह डाकू कैदी मर गया ? नहीं ! तो फिर यह बूढ़ा चिल्ला चिल्ला कर क्यों कान के परदे फाड़े डालता है ?

उसी रात स्वजन-सम्बन्धियों से दूर, जेल की उसी चारपाई पर रामलाल का शरीरान्त हो गया।

न तो समाज का ही दण्ड वह पूरा पूरा भोग सका और न कारागार का ही। तो क्या इसीलिए अन्तिम समय उसने मेरे निकट अपनी वह आकांक्षा प्रकट की थी—

इति

आषाढ़ कृष्ण १३—१९९१

चिरगाँव।